सुदर्शन चरित्र

अनुक्रमणिका

0001) मंगल और प्रस्तावना
0001) सुदर्शन का जन्म
002) सुदर्शन की युवावस्था
002) सुदर्शन संकट में
004) सुदर्शन का धर्म-श्रवण
004) सुदर्शन और मनोरमा के भव
006) सुदर्शन की तपस्या
006) संकट पर विजय
008) सुदर्शन का निर्वाण-गमन

!! श्रीसर्वज्ञवीतरागाय नम: !!
श्री-सकलकीर्ति-भट्टारक प्रणीत
श्री
सुदर्शन-चरित्र
आभार : श्री मूलचन्द किशनचन्द कापड़िया, सूरत; पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां-राजस्थान
!! नम: श्रीसर्वज्ञवीतरागाय !!
ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नम: ॥1॥
अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान् ॥2॥
अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नम: ॥3॥
॥ श्रीपरमगुरुवे नम:, परम्पराचार्यगुरुवे नम: ॥
सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसम्बन्धकं, भव्यजीवमन: प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री-सुदर्शन-चरित्र नामधेयं, अस्य मूल-ग्रन्थकर्तार: श्री-सर्वज्ञ-देवास्तदुत्तर-ग्रन्थ-कर्तार: श्री-गणधर-देवा: प्रति-गणधर-देवास्तेषां वचनानुसार-मासाद्य श्री-सकलकीर्ति-भट्टारक विरचितं ॥
॥ श्रोतार: सावधान-तया शृणवन्तु ॥
मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम् ॥
सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनम् ॥

मंगल और प्रस्तावना

मंगल और प्रस्तावना
कथा :
श्रीवर्धमान भगवान को नमस्कार है, जो धर्मीतीर्थ के प्रवर्तन करानेवाले और तीन लोक के स्वामी हैं, तथा संसार के बन्धु और अनन्त सुखमय हैं और कर्मों का नाश कर जिन्होंने अविनाशी सुख का स्थान मोक्ष प्राप्त कर लिया है ।
श्री आदिनाथ भगवान को नमस्कार है । धर्म ही जिनका आत्मा है, जो बैल के चिह्नट से युक्त हैं और युग की आदि में पवित्र धर्मतीर्थ के प्रवर्तक हुए हैं ।
इनके सिवा और जो तीर्थंकर हैं, उन्हें भी मैं नमस्कार करता हूँ । वे संसार के जीवों का उपकार करनेवाले और सबके हितू हैं, अविनाशी लक्ष्मी से युक्त और देवों द्वारा पूज्य हैं तथा जगत के स्वामी हैं ।
सिद्ध भगवान को मैं नमस्कार करता हूँ, जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघु, अवगाहना आदि आठ गुणों से युक्त और आठ कर्मों तथा शरीर से रहित हैं, अन्तरहित और लोक-शिखर के ऊपर विराजमान हैं ।
श्री सुदर्शन मुनिराज को मैं नमस्कार करता हूँ, जो कर्मों को नाशकर सिद्ध हो चुके हैं, जिनके अचल ब्रह्मचर्य को नष्ट करने के लिए अनेक उपद्रव किये गये तो भी जिन्हें किसी प्रकार का क्षोभ या घबराहट न हुई । मेरु की तरह जो निश्चल बने रहे ।
उन आचार्यों को मैं नमस्कार करता हूँ, जो स्वयं मोक्ष-सुख की प्राप्ति के लिये पंचाचार पालते हैं और अपने शिष्यों को उनके पालने का उपदेश करते हैं तथा सारा संसार जिन्हें सिर नवाता है ।
उन उपाध्यायों को भक्तिपूर्वक नमस्कार है, जो ग्यारह अंग और चौदह पूर्व का स्वयं अभ्यास करते हैं और अपने शिष्यों को कराते हैं । ये

उपाध्याय महाराज मुझे आत्मलाभ करावें ।
उन साधुओं को बारम्बार नमस्कार है, जो त्रिकाल योग के धारण करनेवाले और मोक्ष-लक्ष्मी के साधक-मोक्ष प्राप्त करने के उपाय में लगे हुए हैं तथा घोरतर तप करनेवाले हैं ।
जिसकी कृपा से मेरी बुद्धि ग्रन्थों के रचने में समर्थ हुई, वह जिनवाणी मेरे इस प्रारम्भ किये कार्य में सिद्धि की देनेवाली हो ।
वे गौतमादि गणधर ऋषि मेरे कल्याण के बढ़ानेवाले हों, जो सब ऋद्धि और अंगशास्त्ररूपी समुद्र के पार पहुँच चुके हैं । जो बड़े भारी सिद्ध-योगी और विद्वान् हैं तथा बाह्य और अन्तरंग परिग्रह रहित हैं । उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ ।
उन गुरुओं के चरण कमलों को नमस्कार है, जिनकी कृपा से मुझे उन सरीखे गुणों की प्राप्ति हो तथा जो परिग्रह रहित और उत्तम गुणों के धारक हैं ।
जिनदेव, गुरु और शास्त्र की मैंने वन्दना-स्तुति की और जिनकी स्वर्ग के देव और चक्रवर्ती आदि महापुरुष वन्दना-स्तुति करते हैं, वे सब सुखों के देनेवाले या संसार के जीवमात्र को सुखी करनेवाले देव, गुरु और शास्त्र मेरे इस आरम्भ किये ग्रन्थ में आनेवाले विघ्नों को नाश करें, सुख दें और इस शुभ काम को पूरा करें ।
वैश्यकुल-भूषण श्रीवर्धमानदेव के कुलरूपी आकाश के जो सूर्य हुए, सब पदार्थों के जाननेवाले पाँचवें अन्त:कृतकेवली हुए, सुन्दर शरीरधारी कामदेव हुए और घोरतर उपसर्ग जीतकर जिन्होंने संसार पूज्यता प्राप्त की, उन सुदर्शन मुनिराज का यह पवित्र और भव्यजनों को सुख देनेवाला धार्मिक-भावपूर्ण चरित्र लिखा जाता है । इससे सबका हित होगा । मैं जो इस चरित को लिखता हूँ, वह इसलिए कि इसके द्वारा स्वयं मेरा और भव्यजनों का कल्याण हो और पंच नमस्कारमंत्र का प्रभाव विस्तृत हो । इसे सुनकर या पढ़कर भव्यजनों की पंच परमेष्ठियों में श्रद्धा पैदा होगी, ब्रह्मचर्य आदि पवित्र व्रतों के धारण करने की भावना होगी, संसार-विषयभोगों से उदासीनता होगी और वैराग्य बढ़ेगा ।

सुदर्शन का जन्म

सुदर्शन का जन्म
कथा :
जम्बूद्वीप एक प्रसिद्ध और मनोहर द्वीप है । उसे लवणसमुद्र चारों ओर से घेरे हुए है । अच्छे धर्मात्मा और पुण्यवानों का वह निवास है । उसके ठीक बीच में सुमेरुपर्वत है । वह ऐसा जान पड़ता है मानो जम्बूद्वीप की नाभि है । सुमेरु एक लाख योजन ऊँचा और सुन्दर बाग-बगीचे तथा जिनमन्दिरों से शोभित है । उससे दक्षिण की ओर भारतवर्ष बड़ी सुन्दरता धारण किये हुए है । रूपाचल नाम के पर्वत को तीन ओर से घेरकर बहनेवाली नदी से वह ऐसा जान पड़ता है मानों उसने धनुषबाण चढ़ा रखा हो । उसके बीच में आर्यखण्ड बसा हुआ है । वह आर्य-पुरुषों से परिपूर्ण है, धर्म का खजाना है और स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति का कारण है ।
उसमें अंगदेश नाम का एक सुन्दर और प्रसिद्ध देश है । वह धर्म और सुख का स्थान है, अनेक छोटे-मोटे गाँव और बागब गीचों से शोभित है । वहाँ के सभी गाँव, नगर, पुर, शहर, देश, धर्मात्मा पुरुषों और बड़े ऊँचे जिनमन्दिरों से युक्त हैं । वहाँ मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओं के संघ धर्मोपदेश के लिये सदा विहार करते हैं और भव्यजनों को मोक्ष का मार्ग बतलाते हैं । वहाँ के बाग फल-फूलों से सुन्दरता धारण किये हुए वृक्षों से युक्त हैं । वे देखनेवालों का मन शीघ्र अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं । उनकी छाया में बैठकर लोग गर्मी का कष्ट दूर कर बड़ा शान्ति लाभ करते हैं । वे चारों ओर बड़ी-बड़ी दूर तक की जगह में विस्तृत हैं । वे ऐसे जान पड़ते हैं जैसे योगी हों । क्योंकि योगी लोग भी जीवों का संसार-ताप मिटाकर शान्ति देते हैं, पवित्र होते हैं और रत्नत्रयरूप फलों से युक्त हैं । मुनियों का मन जैसा निर्मल होता है, ठीक ऐसे ही निर्मल जल के भरे वहाँ के सरोवर, कुएं, बावड़ियाँ हैं । मुनियों का मन पाप-मल का नाश करनेवाला है, ये शरीर की मलिनता दूर करते हैं । मुनियों का मन संसार के विषयभोगों की तृष्णा से रहित हैं और ये प्यासे की प्यास बुझाते हैं । वहाँ के कितने धर्मात्मा श्रावक रत्नत्रय धारण कर तप द्वारा निर्वाण लाभ करते हैं, कितने ग्रैवेयक जाते हैं, कितने सौधर्मादि स्वर्गों में जाते हैं, कितने सरल परिणामी दान देकर भोगभूमि लाभ प्राप्त करते हैं और कितने देव-गुरु-शास्त्र की पूजा द्वारा पुण्य उत्पन्न कर इन्द्र या तीर्थंकरों के वैभव को प्राप्त करते हैं । वहाँ उत्पन्न हुए लोग जब अपने पवित्र आचार-विचारों द्वारा धर्म, **अर्थ**, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों को प्राप्त कर सकते हैं, तब वहाँ का और अधिक वर्णन क्या हो सकता है? अंगदेश इस प्रकार धन-दौलत, धर्म-कर्म, गुण-गौरव

आदि सभी उत्तम बातों से परिपूर्ण है ।

जिस समय की यह कथा है, उस समय अंगदेश की राजधानी चम्पानगरी थी । वह बड़ी सुन्दर और गुणी, धनी, धर्मात्मा पुरुषों से युक्त थी । बड़े ऊँचे-ऊँचे कोटों, दरवाजों, बावड़ियों, खाईयों और शूरवीरों से वह शोभित थी और इसीलिए शत्रु लोगों का उसमें प्रवेश नहीं था । वह इन बातों से अयोध्या जैसी थी । अत्यन्त विशाल, भव्य जिनभगवान के मन्दिरों से उसने जो मनोहरता धारण कर रखी थी, उससे ऐसी जान पड़ती थी मानो वह धर्म की सुन्दर खान है । वे जिनमन्दिर ऊँचे शिखरों पर फहराती हुई ध्वजाओं के समूह से, सोने की बनी हुई प्रतिमाओं से, भामण्डल-छत्र चंवर आदि उपकरणों से, बाजों के मन मोहनेवाले सुन्दर शब्दों से और दर्शनों के लिये आने-जानेवाले भव्यजनों से उत्सव और आनन्दमय हो रहे थे । वहाँ लोगों को धर्म से इतना प्रेम था । वे इतने धर्मात्मा थे कि सबेरे उठते ही सबसे पहले सामायिक करते थे । इसके बाद नित्य क्रियाओं से छुट्टी पाकर वे भक्ति से जिनभगवान की पूजा करते, स्वाध्याय करते और फिर घर पर आकर दान के लिये पात्रों का निरीक्षण करते । इसी प्रकार साँझ को सामायिकादि क्रियाँए करते, परमेष्ठी का ध्यान करते, वन्दना-स्तुति करते । यह उनकी शुभचर्या थी । इसके पालने में वे कभी आलस या प्रमाद नहीं करते थे । वे मिथ्यात्व से सदा दूर रहते थे । साधु-महात्माओं के वे बड़े सेवक थे । धर्म से उन्हें अत्यन्त प्रेम था । वे बड़े पुण्यवान थे, ज्ञानी थे, दानी थे, धनी थे, स्वरूपवान थे, सुखी थे और सम्यग्दर्शन, व्रत, शील आदि गुणों से भूषित थे । वे जब अपने उन्नत और सुन्दर महलों पर अपने समान ही सुन्दर और गुणवाली अपनी स्त्रियों के साथ बैठते, तब ऐसा जान पड़ता था मानो स्वर्गों के देवगण अपनी देवांगनाओं के साथ बैठे हैं ।

चम्पानगरी की प्रजा बड़ी सौभाग्यवती थी, जो जैसी नगरी सुन्दर और सब गुणों से परिपूर्ण थी, वैसे ही गुणी और सब राजाओं के शिरोमणि राजा भी उसे पुण्य से मिल गये । उनका नाम धात्रीवाहन था । वे बड़े धर्मात्मा थे, दानी थे, प्रतापी थे और शीलवान थे । राजनीति के वे बड़े धुरन्धर विद्वान थे । प्रजा पर उनका अत्यन्त प्रेम था । अपने इन गुणों से वे चक्रवर्ती की तरह तेजस्वी जान पड़ते थे । उनकी रानी का नाम अभयमती था । पट्टरानी का उच्च सम्मान इसे ही प्राप्त था । यह बड़ी सुन्दरी और गुणवती थी । चम्पानगरी के राजसेठ का सम्मान वृषभदास को प्राप्त था । वृषभदास बड़े धर्मात्मा और पवित्र रत्नत्रय-व्रत-संयम-शील आदि गुणों के धारक थे । बड़े रूपवान थे । देव-गुरु के वे बड़े भक्त थे और सदाचारी थे । जिनधर्म पर उनका बड़ा प्रेम था । इन्हीं गुणों के कारण सारी चम्पानगरी में उनकी बड़ी मान-मर्यादा थी । उनकी स्त्री का नाम जिनमती था । वह बड़ी सुन्दरी थी-देवांगनाँए उसके रूप को देखकर शर्माती थीं । वृषभदास के समान यह भी जिन भगवान की पूर्ण भक्त थी, महासती थी और पुण्यवती थी । वृषभदास अपने समान ही गुणवती स्त्री को पाकर बहुत सुखी हुए । एक दिन जिनमती अपने शैय्यागृह में पलंग पर सुख की नींद सोई हुई थी । पिछली रात का समय था । इस समय उसने एक शुभ स्वप्न देखा । उसमें उसने फलों से युक्त सुदर्शन नामक कल्पवृक्ष और देवों के महल को, विशाल समुद्र और बढ़ती हुई प्रचण्ड अग्नि को देखा । सबेरे जब वह उठी और स्वप्न का उसे स्मरण हुआ, तब वह बड़ी आनन्दित हुई । धर्मप्राप्ति के लिये पहले उसने सामायिकादि क्रियाँए कीं । इसके बाद वह बहुत गहने-गाँठे और सुन्दर वस्त्रों को पहनकर अपने स्वामी के पास पहुँची । बड़े विनय के साथ उसने वृषभदास से अपने स्वप्न का हाल कहा । उस शुभ स्वप्न को सुनकर उन्हें भी बड़ा आनन्द हुआ । सेठ ने जब जिनमती से कहा । प्रिये, चलो, जिनमन्दिर चलकर ज्ञानी मुनिराज से इस स्वप्न का हाल पूछें । क्योंकि इसका फल जैसा मुनिराज कह सकेंगे, वैसा कोई नहीं कहा सकता । यह कहकर वृषभदास जिनमती को साथ लिये जिनमन्दिर पहुँचे । उन्हें स्वप्न का हाल जानने की बड़ी उत्कण्ठा लगी थी । पहले ही उन्होंने धर्मप्राप्ति के लिये भक्ति के साथ भगवान की पूजा-स्तुति और वन्दना की । इससे उन्हें महान पुण्य का बन्ध हुआ । इसके बाद वे तीन ज्ञानधारी श्री सुगुप्ति मुनिराज के पास पहुँचे । उनकी भी पूजास्तुति कर उन्होंने उनसे स्वप्न का फल पूछा । योगी ने अनुग्रह कर सेठ से कहा । सेठ महाशय! ध्यान से सुनिए । मैं आपको स्वप्न का फल कहता हूँ । स्वप्न में पहले ही जो सुदर्शनमेरु देखा है, उससे आपको एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति होगी । वह बड़ा साहसी और अत्यन्त रूपवान कामदेव होगा । अपने गुणों से वह अत्यधिक मान-मर्यादा लाभ करेगा । कल्पवृक्ष के देखने से वह बड़ा धनी, दानी, भोगी और सबकी आशाओं को पूर्ण करनेवाला होगा और जो स्वप्न में देवों का महल देखा है, उससे वह देवों द्वारा पूज्य होगा । अन्त में अग्नि देखी गई है, उसके फल से वह सब कर्मों का नाश कर मोक्ष लाभ करेगा । सुनिए । ये सब शुभ स्वप्न हैं और आपके होनेवाले पुत्र के गुणों के सूचक हैं । स्वप्न का फल सुनकर सेठ बड़े प्रसन्न हुए । इसके बाद वे उन मुनिराज को नमस्कार कर अपनी प्रिया के साथ अपने महल लौट आये ।

इस घटना के कुछ ही दिन बाद जिनमती के गर्भ रहा । उसे देख बन्धु-बान्धवों को बड़ी प्रसन्नता हुई । वह पवित्र गर्भ ज्यों- ज्यों बढ़ने

लगा, त्यों-त्यों कुटुम्बियों को जिनमती पर बड़ा प्रेम होने लगा । इस गर्भ से जिनमती ऐसी शोभने लगी मानों वह रत्न की खान है । जब नौ महीने पूरे हुए, तब अच्छे मुहूर्त में पौष सुदी 4 को सुखपूर्वक उसने पुत्र-रत्न प्रसव किया । उसके प्रचण्ड तेज ने सूर्य के तेज को दबा दिया । उसके शरीर की कान्ति ने चन्द्रमा को जीत लिया । वह सुन्दर इतना था कि उसकी उपमा देने के लिये संसार में कोई पदार्थ ही न रहा । वृषभदास तब उसी समय अपने बन्धुओं को साथ लेकर जिनमन्दिर पहुँचा । वहाँ उसने बड़े वैभव के साथ सुख प्राप्ति के लिये जिनभगवान की पूजा की, जो सब सुखों को देनेवाली हैं । गरीब, असहाय, अनाथों को उनकी इच्छा के अनुसार उसने दान दिया; बहुत गीत-नृत्यादि उत्सव करवाया । घरों पर ध्वजा, तोरण बाँधे गये । इत्यादि बड़े ठाट-बाट से पुत्र का जन्मोत्सव मनाया गया ।

कुछ दिनों बाद सेठ ने पुत्र का नामकरण संस्कार किया । वह देखने में बड़ा सुन्दर था, इसलिए उसका नाम भी सुदर्शन रखा गया । सुदर्शन अपने योग्य खान-पान से दिनों दिन दूज के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगा । उसकी वह मधुर हँसी, तोतली बोली आदि स्वाभाविक बाल-विनोद को देखकर परिवार के लोगों को अत्यन्त आनन्द होता था । उसके जैसे तो छोटे-छोटे सुन्दर हाथ-पाँव और उनमें वैसे ही छोटे-छोटे आभूषण पहनाये गये, उनसे वह बड़ा ही सुन्दर दिखता था । उसकी बाल-बुद्धि की चंचलता देखकर सबको बड़ी प्रसन्नता होती थी ।

एक और सेठ इसी चम्पापुरी में रहता था । उसका नाम सागरदत्त था । वह भी बड़ा बुद्धिमान और धनी था । उसकी स्त्री का नाम सागरसेना था । वृषभदास और सागरदत्त की परस्पर में गाढ़ी मित्रता थी । इसी मित्रता के वश होकर एक दिन सागरदत्त ने वृषभदास से कहा । प्रिय मित्र, मेरी प्रिया के जो सन्तान होगी और वह यदि लड़की हुई तो मैं उसका ब्याह आपके सुदर्शन के साथ ही करँगा । यह सम्बन्ध अपने लिये बड़ा सुख का कारण होगा । भावना निष्फल नहीं जाती, इस उक्ति के अनुसार सागरदत्त के बड़ी सुन्दरी और गुणवती लड़की ही हुई । उसका नाम रखा गया मनोरमा । वह भी दिनोंदिन बढ़ने लगी ।

इधर सुदर्शन ने मुग्धावस्था को छोड़कर कुमारावस्था में पाँव रखा । रूप से, तेज से, शरीर की सुन्दरता और गठन से वह देवकुमार-सा दिखने लगा । उसे सुन्दरता में कामदेव से भी बढ़कर देखकर वृषभदास ने बड़े वैभव के साथ देव-गुरु-शास्त्र की पूजा की और इसी शुभ दिन में उसे गुरु के पास पढ़ने को भेज दिया । सुदर्शन भाग्यशाली और बुद्धिमान था, इसलिए वह थोड़े ही दिनों में शास्त्ररूपी समुद्र के पार को प्राप्त हो गया । अच्छा विद्वान हो गया । सुदर्शन की पुरोहित-पुत्र कपिल के साथ मित्रता हो गयी । सुदर्शन उसे जी-जान से चाहने लगा । कपिल को भी एक पलभर सुदर्शन को न देखे तो चैन नहीं पड़ता था । वह सदा उसके साथ रहा करता था । कपिल हृदय का भी बड़ा पवित्र था ।

सुदर्शन ने अब कुमार अवस्था को छोड़कर जवानी में पाँव रखा । रत्नों के आभूषणों और फूलों की मालाओं ने उसकी अपूर्व शोभा बढ़ा दी । नेत्रों ने चंचलता और प्रसन्नता धारण की । मुख चन्द्रमा की तरह शोभा देने लगा । चौड़ा ललाट कान्ति से शोभित उठा । मोतियों के हारों ने गले और छाती की शोभा में और भी सुन्दरता पैदा कर दी । अएगूठी, कड़े, पोंची आदि आभूषणों से हाथ कृतार्थ हुए । रत्नों की करधनी से कमर प्रकाशित हो उठी । सुदर्शन की जाँघें केले के स्तम्भ समान कोमल और सुन्दर थी । उसका सारा शरीर कान्ति से दिप रहा था । उसके चरण-कमल नखरूपी चन्द्रमा की किरणों से बड़ी सुन्दरता धारण किये थे । वह सदा बहुमूल्य और सुन्दर वस्त्राभूषणों से, चन्दन और सुगन्धित फूलमालाओं से सजा रहता था । इस प्रकार उसे शारीरिक सम्पत्ति और धन-वैभव का मनचाहा सुख तो प्राप्त था ही, पर इसके साथ ही उसे धार्मिक सम्पत्ति भी, जो वास्तव में सुख की कारण है, प्राप्त थी । वह बड़ा धर्मात्मा था, बुद्धिवान् था, विचारशील था, साहसी था, चतुर था, विवेकी था, विनयी था, देव-गुरु-शास्त्र का सच्चा भक्त था, बड़ा बोलनेवाला था, स्वरूपवान् था, गुणी था और हृदय का बड़ा पवित्र था । एक महापुरुष में जो लक्षण होने चाहिए, वे यशस्विता, तेजस्विता आदि प्राय: सभी गुण सुदर्शन को प्राप्त थे । इस प्रकार युवावस्था को प्राप्त होकर अपने गुणों द्वारा सुदर्शन देवकुमारों जैसा शोभने लगा ।

यह सब पुण्य का प्रभाव है कि जो सुदर्शन कामदेव और गुणों का समुद्र हुआ; और जिसी सुन्दरता की समानता संसार की कोई वस्तु नहीं कर सकी । इसे जो देख पाता, उसी की आँखों में यह बस जाता था । सबको बड़ा प्रिय लगता था । इस प्रकार कुमार अवस्था के योग्य सुखों को इसने खूब भोगा । तब जो तत्त्वज्ञ हैं । धर्म का प्रभाव जानते हैं, उन्हें उचित है कि वे भी धर्म का सेवन करें । क्योंकि धर्म ही धर्मप्राप्ति का कारण और सुख की खान है और इसीलिए धर्मात्मा जन जिनधर्म का आश्रय लेते हैं । धर्म से सब गुण प्राप्त होते हैं । धर्म को छोड़कर और कोई ऐसी वस्तु नहीं जो जीव का हित कर सके । ऐसे उच्च धर्म का मूल है दया । उसमें मैं अपने मन को लगाता हूँ ।

एकाग्र करता हूँ । उस धर्म को मेरा नमस्कार है । वह मेरे पापों का नाश करे ।

सुदर्शन की युवावस्था

सुदर्शन की युवावस्था

कथा :

जो सदा जीवों का कल्याण-हित करनेवाले हैं और संसार के सर्वोत्तम शरण हैं, उन अरहन्त, सिद्ध, साधु और सर्वज्ञप्रणीत धर्म को मेरा नमस्कार है ।

एक दिन सुदर्शन अपने मित्रों को साथ लिये शहर में घूमने को निकला । वह हँसी-विनोद करता हुआ जा रहा था । उसकी खूबसूरती को देखकर लोग मुग्ध होते थे । इसी समय मनोरमा सोलहों श्रृंगार किये अपनी सखी-सहेलियों के साथ जिनमन्दिर को जा रही थी । सुदर्शन ने उसे देखा । उसकी रूपसुधा का पान किया । उसे जान पड़ा कि किसी गुप्त शक्ति ने उसके हृदय को बड़े जोर से पकड़ लिया । वह छूटने की कोशिश करता है, पर छूट नहीं पाता । मनोरमा पर वह अत्यन्त मोहित हो गया । वह वहाँ से आगे न बढ़कर वापिस घर की ओर लौटा । उसकी बेचैन अवस्था बढ़ती जा रही थी । घर जाते ही वह बिछौने पर जा पड़ा । उसकी यह दशा देखकर उसके माता-पिता ने उससे पूछा । बेटा! एकाएक तेरी ऐसी बुरी हालत क्यों हो गयी? सुदर्शन लज्जा के मारे उन्हें कुछ उत्तर न दे सका । तब उन्होंने उसके मित्र कपिल से पूछा । कपिल बोला । पिताजी! हम लोग शहर में घूमते हुए चले जा रहे थे । इसी समय अपने सागरदत्त सेठ की लड़की मनोरमा मन्दिर जा रही थी । सुदर्शन की उस पर नजर पड़ गयी । जान पड़ता है, उसे देखकर ही इसकी यह दशा हो गयी है ।

कपिल द्वारा यह हाल सुनकर वृषभदास को बड़ी प्रसन्नता हुई । इसलिए कि मनोरमा एक तो अपने मित्र की ही लड़की और उस पर भी सागरदत्त स्वयं सुदर्शन के साथ उसका ब्याह करने के लिये उसके जन्म न होने के पहले ही कह चुका है । तब पुत्र के सुख के लिये वे स्वयं सागरदत्त के घर जाने को तैयार ही हुए थे कि इतने में मनोरमा का पिता उनके घर पर आ उपस्थित हुआ । कारण कि इधर जैसे सुदर्शन मनोरमा को देखकर काम से पीड़ित हुआ, उधर मनोरमा की भी यही दशा हुई । सुदर्शन को देखकर जो कामाग्नि धधकी, वह उसके हृदय और शरीर को बड़े प्रचण्डरूप से जलाने लगी । काम ने मानों उसे ग्रास बना लिया । वह घर आकर अपनी सेज पर जा सोई । सुदर्शन का वियोग उसे अत्यन्त कष्ट देने लगा । उसकी यह दशा देखकर उसके पिता ने उसकी सखी-सहेलियों से इसका कारण पूछा । सुदर्शन पर मनोरमा का प्रेम हुआ सुनकर सागरदत्त उसके घर पहुँचा । सुदर्शन का पिता तो जाने के लिये तैयार खड़े ही थे कि इसी समय एकाएक सागरदत्त को अपने यहीं आया देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने सागरदत्त का उचित आदर-सत्कार कर उसे एक अच्छी जगह बैठाया और आप भी बैठे । इसके बाद बड़े नम्र शब्दों में उन्होंने सागरदत्त से पूछा । हाँ, आप वह कारण बतलाइए जिससे कि मेरे क्षुद्र गृह को अपने चरणों से पवित्र कर आपने मेरा सौभाग्य बढ़ाया । सागरदत्त ने तब मधुर-मधुर हँसते हुए कहा । महाशय, मुझे इस बात की आज अत्यन्त खुशी है कि मेरा किया संकल्प आज पूरा होता है । आपको स्मरण होगा कि मैंने आपसे कहा था कि मैं अपनी लड़की की शादी आपके पुत्र के साथ करँगा । वह समय उपस्थित है और खास उसी लिये मैं आज आपसे प्रार्थना करने आया हूँ । आशा ही नहीं, विश्वास है । आप मेरी नम्र प्रार्थना स्वीकार करेंगे । यह सुनकर सुदर्शन के पिता ने कहा । प्रियमित्र! जैसा मेरा सुदर्शन सुन्दर और गुणी, वैसी ही आपकी मनोरमा सुन्दरी और वदिुषी, भला तब कहिए, इस मणि-कांचन संयोग को कौन न चाहेगा? इसके बाद ही उन्होंने श्रीधर नाम के एक अच्छे ज्योतिषी विद्वान को विवाह का शुभ दिन पूछने को बुलाया । ज्योतिषी महाशय ने तब अपने पोथी-पाने देखकर विवाह का शुभ दिन बतलाया । बैसाख सुदी पंचमी । वही दिन निश्चय कर वृषभदास और सागरदत्त ने विवाह का काम-काज भी शुरु कर दिया । दोनों के यहाँ अच्छे मंडप तैयार किये गये । सुबह और शाम को नौबतें झड़ने लगीं । खूब उत्सव किया गया । जो दिन विवाह के लिये निश्चित था, उस दिन पहले ही दोनों सेठों ने जिनमन्दिर जाकर बड़े ठाट-बाट से जिन भगवान की अभिषेकपूर्वक पूजा की । इसलिए कि उनका विवाहोत्सव निर्विघ्न पूरा हो । कोई प्रकार का विघ्न न आवे और सब सुखों की प्राप्ति हो । इसके बाद उन्होंने अपने बन्धु-बन्धवों को बहुमूल्य वस्त्राभूषण आदि भेंटकर उनका उचित आदर-सम्मान किया । अविरत होनेवाले गीत-नृत्य-संगीत आदि से उनका घर उत्सवमय बन गया । जिधर देखो उधर ही उत्सव-आनन्द दिखायी पड़ने लगा ।

सुदर्शन और मनोरमा एक तो वैसे ही स्वभाव से ही सुन्दर, उसपर उन्हें जो बहुमूल्य जवाहरात के भूषण, सुन्दर वस्त्र, फूलमाला आदि पहनाये गये, उनसे उनकी शोभा और भी बढ़ गयी । वे ऐसे जान पड़ने लगे मानों देवकुमार और सुरबाला का जोड़ा इस लोक में अपना

ऐश्वर्य बतलाने को स्वर्ग से आया है । समय पर बड़े वैभव के साथ इनका पवित्र विवाहोत्सव सम्पन्न हो गया । पुण्य के उदय से दोनों दम्पति को अपनी-अपनी मनचाही वस्तु प्राप्त हो गयी । दोनों को इससे जो सुख, जो आनन्द मिला, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । इन नव दम्पति के अब ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, त्यों-त्यों उनका प्रेम अधिकाधिक बढ़ता ही गया । दोनों सुन्दर, दिव्य देह के धारी, दोनों गुणी, फिर इनके प्रेम का, इनके सुख का क्या पूछना । दोनों ही दम्पति कल्पवृक्ष से उत्पन्न हुए सुख को भोगते हुए आनन्द से समय बिताने लगे । इनकी सुन्दरता बड़ी ही मोहित करनेवाली थी । इन्हें जो देख पाता था, उसकी आँखों को बड़ी शान्ति मिलती थी । इसी तरह सुख से रहते हुए पुण्य से इन्हें एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई । वह भी इन्हीं सरीखा दिव्यरूप धारी, गुणी और नेत्रों को आनन्द देनेवाला था । उसका नाम सुकान्त रखा गया ।

एक बार समाधिगुप्त मुनिराज अपने बड़े विशाल संघ के साथ विहार करते हुए चम्पापुरी में आये । आकर वे शहर के बाहर बाग में ठहरे । वे बड़े ज्ञानी और तपस्वी थे । बड़े-बड़े राजे-महाराजे, देव, विद्याधर आदि सभी उन्हें मानते थे । उनकी सेवा-भक्ति करते थे । सच्चे मोक्षमार्ग का प्रचार करना और भव्यजनों को उसमें प्रवृत्त करना उनका काम था । जीवमात्र का हित हो और वे ज्ञान लाभ करें, ऐसे उपायों-कोशिशों के करने में वे सदा तत्पर रहा करते थे । बाग के माली ने उनके आने के समाचार राजा वगैरह को दिए ।

शहर के सब लोग अपने-अपने परिजन के साथ पूजन सामग्री ले-लेकर बड़े आनन्द से उनकी पूजा-वन्दना करने को गये । वहाँ सब संघ के साथ विराजे हुए समाधिगुप्त योगिराज की उन्होंने बड़ी भक्ति के साथ आठ द्रव्यों से पूजा की, उन्हें सिर झुका नमस्कार किया, बड़े प्रेम के साथ उनके गुण गाये-स्तुति की । इसके बाद धर्मोपदेश सुनने की इच्छा से वे सब उनके चरणों के पास बैठ गये । समाधिगुप्त मुनिराज ने उस धर्मामृत की प्यासी भव्यसभा को धर्मवृद्धि देकर इस प्रकार उपदेश करना आरम्भ किया ।

भव्यजनो! जिनभगवान ने जिस धर्म का उपदेश किया, वह पवित्र दयाधर्म संसार में सब धर्मों से उच्च धर्म है । उसमें जीवमात्र, फिर चाहे वह छोटा हो या बड़ा, समान दृष्टि से देखे जाते हैं । किसी भी जीव को प्रमाद या कषाय से जरा भी कष्ट पहुँचाना उसमें मना है और उसकी यह उदार भावना है कि ।

'मा कार्षीत्कोपि पापानि मा च भूत्कोपि दु:खित: ।'

मतलब यह कि न कोई पापकर्म करे और न कोई दु:खी होसंसार के जीवमात्र सुखलाभ करें । तब भव्यजनों! तुम इसी पवित्र धर्म को दृढ़ता के साथ धारण करो । देखो, यह दयामयी धर्म पापों का नाश करनेवाला और मोक्ष-सुख का देनेवाला है । इसी धर्म के प्रसाद से धर्मात्माजन तीन लोक की सम्पत्ति प्राप्त करते हैं । उसके लिये उन्हें कुछ प्रयत्न नहीं करना पड़ता । जो लोग इन्द्र और अहमिन्द्र का पद लाभ करते हैं, तीर्थंकर होते हैं, आचार्य या संघाधिपति होते हैं, वह सब इसी धर्म का फल है । तीन लोक में जो उत्तम से उत्तम सुख है, ऊँची से ऊँची भावनाँए हैं । मनचाही वस्तुओं की चाह है, वे सब हमें धर्म से प्राप्त हो सकती हैं । धर्मराज के भय से मौत भी भाग जाती है । उसका कोई वश नहीं चलता और पापरूपी राक्षस तो उसके सामने खड़ा भी नहीं होता । धर्म से बुद्धि निर्मल और पापरहित होती है, श्रेष्ठ और पवित्र होती है और उसमें सब पदार्थ प्रतिभासित होने लगते हैं । सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चारित्र आदि जितने संसार के हरनेवाले और मोक्ष-सुख के देनेवाले गुण हैं, वे सब धर्मात्माजन धर्म के प्रभाव से प्राप्त करते हैं । कला, विज्ञान, चतुरता, विवेक, शान्ति, संसार के दु:खों से भय, वैराग्य आदि पवित्र गुण धर्म से ही बढ़ते हैं । इस धर्मरूपी मन्त्र का प्रभाव बहुत बढ़ा-चढ़ा है । शिव-सुन्दरी भी इससे आकर्षित होकर धर्मात्मा जन को अपना समागम-सुख देती है, तब बेचारी स्वर्ग की देवांगनाओं की तो उसके सामने कथा ही क्या?

इस प्रकार स्वर्ग और मोक्ष का सुख देनेवाला जो धर्म है, उसे जिन-भगवान ने दो भागों में बाँटा है । पहला-गृहस्थधर्म, जो सरलता से धारण किया जानेवाला एकदेशरूप है । इसमें पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत; इस प्रकार ये बारह व्रत धारण किये जाते हैं और देव-पूजा, गुरु-सेवा, स्वाध्याय, संयम, तप, दान ये छह कर्म प्रतिदिन किये जाते हैं । इसी गृहस्थधर्म के विशेष भेदरूप ग्यारह प्रतिमाँए हैं । क्रम-क्रम से उन्हें धारण करता हुआ श्रावक इस धर्म की अन्तिम श्रेणी तक पहुँचकर फिर दूसरे मुनिधर्म के योग्य हो जाता है । इस गृहस्थधर्म का साक्षात् फल है सोलह स्वर्गों की प्राप्ति और परम्परा मोक्ष । दूसरा । मुनिधर्म है । यह सर्व-त्यागरूप होता है, अतएव कठिन भी है । सहसा उसे कोई धारण नहीं कर पाता । उसमें जिन बातों का त्याग किया जाता है या जो बातें ग्रहण की जाती हैं, वह त्याग और ग्रहण पूर्णरूप से होता है । कल्पना कीजिए, जैसे अणुव्रतों में पाँचवाँ अणुव्रत है 'परिग्रह-परिमाण' । **अर्थ**ात् धनधान्य, दासी-दास, सोना-चाँदी आदि दस प्रकार वस्तुओं का प्रमाण करना । अपनी लोकयात्रा के निर्वाह लायक वस्तुएँ रखकर बाकी वस्तुओं का त्याग कर

देना । यह तो गृहस्थधर्म के योग्य एकदेश-त्यागरूप अणुव्रत है और इसी व्रत को मुनि जब धारण करते हैं तो वे सर्व-त्यागरूप धारण करेंगे । इन वस्तुओं में से वे कुछ भी न रखकर सबका त्याग कर देंगे । वे घर-बार छोड़कर जंगलों में रहेंगे । इसी धर्म का दूसरा नाम है महाव्रत । इसमें पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति, पाँच समिति आदि अठ्ठाईस मूलगुण धारण किये जाते हैं । इस धर्म को वे ही धारण कर सकते हैं जो बड़े धीर-वीर और साहसी होते हैं । इसके धारण करनेवाले योगी लोग बड़ी कठिन तपस्या करते हैं । वे गर्मी के दिनों में पहाड़ों की चोटियों पर, वर्षा के दिनों में वृक्षों के नीचे और ठण्ड के दिनों में नदी या तालाब के किनारों पर तप तपा करते हैं । वे बड़े क्षमाशील, कोमल-परिणामी, सरल-स्वभावी, सत्य बोलनेवाले, निर्लोभी, संयमी, तपस्वी, त्यागी, निष्परिग्रही और ब्रह्मचारी होते हैं । इस धर्म का साक्षात् फल है मोक्ष और गौण फल स्वर्गादिक का सुख । इस निष्पाप यतिधर्म को जैसा निर्मोही मुनि लोग ग्रहण कर सकते हैं, वैसा मोही गृहस्थ स्वप्न में भी उसे धारण नहीं कर सकते । इसीलिए कि उनका चित्त सदा आकुल-व्याकुल रहने के कारण उनके अशुभ कर्मों का आस्रव अधिक आता रहता है और यही कारण है कि वे मुनिधर्म की कारण वास्तविक चित्त-शुद्धि को प्राप्त नहीं कर सकते । इतने कहने का सार यह है कि यह मोह संसार का शत्रु है, इसलिए महात्मा पुरुषों को चाहिए कि वे इसे वैराग्यरूपी तलवार से मारकर धर्म को ग्रहण करें ।

सुदर्शन के पिता ने इस प्रकार निर्दोष मुनिधर्म का उपदेश सुनकर मन में विचारा-हाय, हम लोगों ने मोहरूपी शत्रु के वश होकर धर्म-साधन करने का बहुत सा समय संयम न धारण कर व्यर्थ ही गएवा दिया । न जाने कालरूपी शत्रु आजकल में कब लिवाने को आ जाय इसे कोई नहीं जान सकता । क्योंकि इस पापी काल को न बालकों का विचार है, न जवानों का और न बूढ़ों का । हर एक को अपनी इच्छानुसार यह चटपट अपने पेट में रख लेता है । आयु बिजली के समान चंचल है । कुटुम्ब-परिवार क्षणिक है । धन-दौलत बादलों के समान देखते-देखते नष्ट होनेवाली है । जवानी रोग से घिरी है । इन्द्रियों का सुख, दु:ख का कारण है । बुद्धिमान लोग उसे अच्छा नहीं कहते । इस संसार में पिता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहिन आदि जितने संयोग हैं या भोगोपभोग हैं, वे सब विनाशीक हैं-निश्चय से नष्ट होनेवाले हैं । इसलिए समझदार लोगों को उचित है कि जब तक शरीर निरोग है, इन्द्रियाँ समर्थ हैं, और आयु नष्ट नहीं हुई है, उसके पहले वे अपने आत्महित के लिए निर्दोष तप का साधन करें । तब मुझे योग्य है कि मैं भी योगी बनकर परम गुरु की कृपा से मोह का नाशकर निर्दोष तप ग्रहण करँ ।

इस विचार ने वृषभदास के हृदय में दूना वैराग्य बढ़ा दिया । उन्होंने तब अपने प्रिय पुत्र सुदर्शन को राजा की संरक्षकता में रखकर और आप बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का, सब धन-दौलत का तृण की तरह परित्याग कर, देव-दुर्लभ संयम-मुनिधर्म के धारक योगी हो गये । इधर उनकी स्त्री जिनमती भी समाधिगुप्त मुनिराज को नमस्कार कर और सब परिग्रह को छोड़कर कर्मों की नाश करनेवाल जिनदीक्षा ले आर्यिका हो गयी । इन दोनों ने जीवनपर्यन्त महान तप किया । अन्त में समाधिपूर्वक प्राणों को छोड़कर ये उसके फल से स्वर्ग में गये, जो कि दिव्य ऐश्वर्य और वैभव से परिपूर्ण है ।

सुदर्शन भी बड़ा ही धर्मात्मा था । उसने भी मुनिराज के पास मोक्ष की इच्छा से श्रद्धापूर्वक सम्यग्दर्शन और उसके साथ-साथ पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत धारण किये और दान, पूजा, स्वाध्याय आदि के प्रतिदिन करने की प्रतिज्ञा की ।

अपनी इन्द्रियों की या विषयों की शान्ति के लिये उसने एक नियम किया । वह यह कि 'मैं अपनी प्रिय पत्नी मनोरमा के सिवा संसार की स्त्री-मात्र को अपनी माता-बहिन के समान गिनूँगा ।' इस धर्म-लाभ से तथा मुनिराज के पवित्र गुणों से सुदर्शन को बड़ा ही आनन्द हुआ । उसका चित्त बहुत ही प्रसन्न हुआ । वह उन्हें बारबार प्रणाम कर अपने घर लौट आया । सुदर्शन ने अब अपना घर का सब कारोबार सम्हाला । पुत्र को वह स्वयं विज्ञान, कला-कौशल आदि की शिक्षा देने लगा । धर्म की ओर भी उसकी पूर्ण सावधानी थी । वह भक्तिपूर्वक रोज देव-गुरु की सेवा-पूजा करता था, सुपात्रों को शक्ति और श्रद्धा से दान देता था, जिनवाणी का मनन-चिन्तन करता था, और धर्म की प्राप्ति हो, वैराग्य बढ़े, इसके लिये वह मन-वचन-काय की शुद्धि से निरतिचार बारह व्रतों का पालन करता था । इसके सिवा वह अष्मी और चतुर्दशी को घरगृहस्थी का सब आरम्भ-सारम्भ छोड़कर प्रौषधोपवास करता था और रात में मुनिसमान सर्वत्यागी हो मसान में कायोत्सर्ग ध्यान करता था । शंकादि दोषरहित सम्यग्दर्शन, पवित्र आचार-विचारों, और शुभ भावनाओं से धर्मलाभ करता हुआ वह ऐसा शोभता था जैसा मानों धर्म की साक्षात् प्रतिमा हो-मूर्तिमान धर्म हो । इस धर्म के फल से उसे जो सुख, जो ऐश्वर्य, जो भोगोपभोग-सामग्री प्राप्त हुई, उसे उसने अपनी प्रिया के साथ-साथ खूब भोगा । सच है धर्म से मनचाही धनस म्पत्ति प्राप्त होती है और धन-सम्पत्ति से काम-पुरुषार्थ की प्राप्ति होती है और जो निस्पृह होकर इन्हें भी छोड़ देता है, फिर उसके सुख का तो पूछना ही क्या । वह

तो मोक्ष के सुख को प्राप्त कर लेता है, जो सुख का समुद्र है । यही जानकर सुदर्शन सेठ अपने मनोरथ की सिद्धि के लिये बड़े यत्न से धर्म-साधन करता था । इस प्रकार वह स्वयं हृदय में धर्म का चिन्तन करता था और लोगों को उसका उपदेश करता था । उसके शुद्ध आचार-विचारों को देखकर यह जान पड़ता मानों वह धर्ममय हो गया है ।
देखिये, सुदर्शन जो इतना सुख भोग रहा है, उसका राजा-प्रजा में मान है, वह गुणों का समुद्र कहा जाता है, यह सब उसने जो धर्म-साधन कर पुण्य कमाया है, उसका फल है । तब जो बुद्धिमान हैं और सुख की चाह करते हैं, उन्हें भी चाहिए कि वे मन-वचन-काय की पवित्रता के साथ एक धर्म ही की आराधना करें । मेरी भी यह पवित्र भावना है कि धर्म गुणों का खजाना है, इसलिए मैं उसका सदा आराधन करता रहूँ । धर्म का मुझे आश्रय प्राप्त हो । धर्म द्वारा मैं मोक्षमार्ग का आचरण करता रहूँ । मेरी सब क्रियाँए धर्म के लिये हों । मेरा दृढ़ विश्वास है । धर्म को छोड़कर मेरा कोई हितु नहीं । मुझे वह शक्ति प्राप्त हो, जिससे मैं धर्म के कारणों का पालन करता रहूँ । धर्म में मेरा चित्त दृढ़ हो और हे धर्म! मेरी तुझसे प्रार्थना है कि तू मेरे हृदय में विराजमान हो ।
धर्म पापरूपी शत्रु का नाश करनेवाला और मनचाहे सुखों का देनेवाला है । जो स्वर्ग चाहता है, उसे स्वर्ग; जो चक्रवर्ती बनना चाहता है, उसे चक्रवर्ती-पद; जिसे इन्द्र होने की चाह है, उसे इन्द्रपद; जो पुत्र चाहता है, उसे पुत्र; जो धन-दौलत चाहता है, उसे धन-दौलत; जो सुख चाहता है, उसे सुख और जो मोक्ष चाहता है, उसे मोक्ष **अर्थ**ात् जिसे जो कुछ इच्छा है-चाह है, वह सब उसे एक धर्म के प्रसाद से प्राप्त हो सकती है । इसलिए हे भव्यजनों! मैं बहुत कहकर आडम्बर बढ़ाना पसन्द नहीं करता ।
आप एक धर्म ही की सावधानी से प्रतिदिन आराधना करें । उससे आप सबकुछ मनचाहा सुख लाभ कर सकेंगे ।

सुदर्शन संकट में

सुदर्शन संकट में
कथा :
महात्मा सुदर्शन ने जिस परम-गति को प्राप्त किया, उसके स्वामी सिद्ध भगवान को मोक्ष प्राप्ति के लिये मैं नमस्कार करता हूँ ।
एक दिन कपिल की स्त्री कपिला ने सुदर्शन को देखा । उसकी अलौकिक सुन्दरता को देखकर वह उस पर जी-जान से निछावर हो गयी । वह मन ही मन कहने लगी । इस खूबसूरत युवा के बिना मेरा जीवन निष्फल है । यह सुन्दरता जब तक मेरा आलिंगन न करे, तब तक मैं जीती हुई भी मरी हूँ । तब मुझे कोई ऐसा उपाय करना चाहिए, जिससे मैं इस स्वर्गीय-सुधा का पान कर सकूँ । वह अब ऐसे मौके को ढएूढ़ने लगी । इधर धर्मात्मा सुदर्शन को इस बात का कुछ पता नहीं, जिससे कि वह सावधान हो जाय । एक दिन सुदर्शन अपनी मित्र-मण्डली के साथ कहीं जा रहा था । वह कपिल के घर के नीचे होकर निकला । उसे जाता देखकर कपिल की स्त्री ने, जो कि काम के बाणों से बहुत ही कष्ट पा रही थी, अपनी एक सखी को बुलाकर कहा । सखी! सुदर्शन को मैं बहुत ही प्यार करती हूँ । मैं नहीं कह सकती कि उसके बिना मेरे प्राण बच सकेंगे या नहीं । इसलिए मैं तुझसे प्रार्थना करती हूँ कि तू जिस तरह बने सुदर्शन को मेरे पास ला । वह तब दौड़ती हुई जाकर सुदर्शन से बोली । कुँवरजी! आप तो ऐसे निर्दयी हो गये जो अपने मित्र तक की खबर नहीं लेते कि वह किस दशा में है? उनकी आज कई दिनों से आँखें बड़ी दुखती हैं । उससे वे बड़े कष्ट में हैं । भई! न जाने आप कैसे मित्र हैं, जो उनकी बात भी नहीं पूछते ।
सुदर्शन ने कहा । मुझे इस बात की कुछ खबर नहीं । नहीं तो भला ऐसा कैसे हो सकता है कि मैं उनके पास न आता । यह कहकर सुदर्शन कपिल के घर पहुँचा । उसे मालूम न था कि कपिल कहाँ है? उसने कपिला की सखी से पूछा । मित्र कहाँ पर है? उसने झूठे ही सुदर्शन से कह दिया । वे ऊपर सोये हुए हैं । आप अपनी इस मण्डली को यहीं बैठाकर अकेले जाइए । सुदर्शन ने वैसा ही किया । अपने मित्रों को वह नीचे ही बैठाकर स्वयं बड़े प्रेम से मित्र के मिलने की इच्छा से ऊपर पहुँचकर एक सुन्दर सजे हुए कमरे में दाखिल हुआ । इधर कामुकी कपिल की स्त्री सखी के जाते ही अपनी सेज पर, जिस पर कि एक बहुत कोमल और शरीर में गुदगुदी पैदा करनेवाला गदेला बिछा हुआ था, जा सोई और ऊपर से उसने एक बारीक कपड़ा मुँह पर डाल लिया ।
सुदर्शन जाकर धीरे से पलंग पर बैठ गया । कारण उसे तो यह ज्ञात न था कि इस पर कपिल की स्त्री सोई हुई है । बैठकर उसने बड़े प्रेम से पूछा । प्रिय मित्र! आपको क्या तकलीफ है? इतने में कपिला ने सुदर्शन का हाथ पकड़कर उसे अपने स्तनों पर रख लिया और बड़ी दीनता के साथ वह सुदर्शन से बोली । प्राणप्यारे! जिस दिन से आपको मैंने देख पाया है, तब से मैं अपने आपे तक को खो चुकी हूँ ।

मृत्यु की सेज पर पड़ी-पड़ी रात-दिन आपकी मंजुल मूर्ति का ध्यान किया करती हूँ । आज बड़े भाग्य से मुझे आपका समागम लाभ हुआ । आप दयावान हैं, इसलिए मैं आपसे प्रेम की भीख माँगती हूँ । मुझे सम्भोग-दान देकर कृतार्थ कीजिए । मुझे काल के मुँह से छुड़ाइए । सुदर्शन एकदम चौंक पड़ा । लज्जा के मारे वह अधमरा सा हो गया । उसे काटो तो खून नहीं । वह कपिला की इस वीभत्स वासना का क्या उत्तर दे । उस परम शीलवान के सामने बड़ी कठिन समस्या आकर उपस्थित हुई । उसने तब बड़े नम्र शब्दों में कहा । बहिन! तू जिसकी चाह करती है, वह पुरुषत्वपना तो मुझमें है ही नहीं । मैं तो विषय-सेवन के बिल्कुल अयोग्य हूँ । और इसके सिवा तुझसी कुलीन घराने की स्त्रियों के लिये ऐसा करना महान कलंक और पाप का कारण है । तुझे तो उचित है कि तू इस अजेय कामरूपी शत्रु को वैराग्य की तलवार से मारकर शीलरूपी दिव्य अलंकार से अपने को भूषित करे-अपने कामी मन को काबू में रखे । क्योंकि जो स्त्री या पुरुष शीलरहित हैं, अपवित्र हैं, वे अपने शील-भंग के पाप से सातवें नरक में जाते हैं । इसलिए प्राणों का छोड़ देना कहीं अच्छा है, पर शील नष्ट करना अच्छा नहीं । कारण कि शील नष्ट कर देने से पाप का बन्ध होता है, संसार में अपकीर्ति होती है और अन्त में अनन्त कष्ट उठाने पड़ते हैं । इस प्रकार वचन सुनकर कपिला को सुदर्शन से बड़ी नफरत हो गयी । उसने सुदर्शन को छोड़ दिया । सुदर्शन भी उसके घर से निकलकर निर्विघ्न अपने घर पहुँच गया । अब से वह और दृढ़ता के साथ अपने शील-धर्म की रक्षा करने लगा । बर्डे धर्म-साधन और सुख से उसके दिन जाने लगे । पुण्य के उदय से उसे सब कुछ प्राप्त हुआ । बसन्त आया । जंगल में मंगल हुआ । वनश्री ने अपने घर को खूब ही सजाया । जिधर देखो उधर ही लतायें बसन्त का-अपने प्राण प्यारे का आगमन देखकर खिले फूलों के बहाने मन्द-मन्द मुस्करा रही थीं । आम्रवृक्ष अपनी सुगंधित मंजरी के बहाने पुष्पवृष्टि कर रहे थे । उन पर कूजती हुई कोकिलाँए बधाई के गीत गा रही थीं । था वन, पर वसन्त ने अपने आगमन से उसे अच्छे-अच्छे शहरों से भी सुहावना और मोहक बना दिया था ।

बसन्त आया जानकर राजा-प्रजा अपने-अपने प्रियजन को साथ लेकर वन-विहार के लिये उपवनों में आ जमा हुए । रानी अभयमती अपने सब अन्त:पुर और प्रिय सहेली कपिला के साथ पुष्पक रथ में बैठकर उपवन में जाने को राजमहल से निकली । इसी समय सुदर्शन की स्त्री मनोरमा भी प्रियपुत्र सुकान्त को गोद में लिये रथ में बैठी बसन्तोत्सव में शामिल होने को जा रही थी । इस स्वर्ग की सी सुन्दरी को जाते देखकर अभयमती ने अपनी सखी-सहेलियों से पूछा । जिसकी सुन्दरता आँखों में चकाचौंध किये देती है, वह रथ में बैठी हुई सुन्दरी कौन है? और किस पुण्यवान् का समागम पाकर वह सफल-मनोरथ हुई है? उनमें से किसी एक सखी ने कहा । महारानीजी! आप नहीं जानती, यह अपने राजसेठ सुदर्शनजी की प्रिया और गोद में बैठे हुए उनके पुत्र सुकान्त की माता मनोरमा है । यह सुनकर रानी ने एक लम्बी साँस लेकर कहा । वह माता धन्य है, जो ऐसे सुन्दर पुत्र-रत्न की माता और सुदर्शन-से खूबसूरत युवा की पत्नी है ।

इस पर कपिला ने कहा । पर महारानीजी! मुझे तो किसी ने कहा था कि सुदर्शन सेठ पुरुषत्व-हीन हैं, फिर भला उनके पुत्र कैसे हुआ?

रानी बोली । नहीं कपिला! यह बात बिल्कुल झूठी है । सुदर्शन जैसा धर्मात्मा कभी पुरुषत्व-हीन नहीं हो सकता । किन्तु जो अत्यन्त पापी होता है, वही पुरुषत्व-हीन होता है, दूसरा नहीं । किसी दुष्ट ने सुदर्शन के सम्बन्ध में ऐसी झूठी बात तुझसे कह दी होगी ।

कपिला बोली । महारानीजी! मैं जो कुछ कहती हूँ, वह सब सत्य है और तो क्या, पर यह घटना स्वयं मुझ पर बीती है । मैं आपसे सच कहती हूँ कि मेरा सुदर्शन पर बड़ा अनुराग हो गया था । एक दिन मौका पाकर मैंने उससे प्रेम की प्रार्थना की; पर उसने स्वयं अपने को पुरुषत्व-हीन बतलाया, तब मुझे उससे बड़ी नफरत हो गयी ।

रानी ने फिर कहा । कपिला! बात यह है कि वह बड़ा धर्मात्मा पुरुष है । पाप की बातों की, पाप की क्रियाओं की जहाँ चर्चा हो, वहाँ तो वह जाकर खड़ा भी नहीं रहता । यही कारण था कि तुझे उस बुद्धिमान ने ऐसा उत्तर देकर ठग लिया ।

यह सुन दुष्ट कपिला को सुदर्शन से बड़ी ईर्षा हुई । उस पापिनी ने तब निर्लज्ज् होकर रानी से बड़े निन्दित शब्दों में, जो स्त्रियों के बोलने लायक नहीं और दुर्गति में ले जानेवाले थे, कहा । रानीजी! मैं तो मूर्ख ब्राह्मणी ठहरी, सो उसने जैसा कहा, वही ठीक मान लिया । पर आप तो क्या सुन्दरता में और क्या ऐश्वर्य में, सब तरह योग्य हैं, इसलिए मैं आपसे कहती हूँ कि आपकी यह जवानी, यह सौभाग्य तभी सफल है, जबकि आप उस दिव्यरूपधारी के साथ सुख भोगें । ऐशो आराम करें ।

रानी अभयमती पहले ही से तो सुदर्शन पर मोहित और उस पर कपिला की यह कुत्सित प्रेरणा, तब वह क्यों न इस काम में आगे बढ़े । उसने उसी समय अपने सतीत्व धर्म को जलांजलि देकर कहा । प्रतिज्ञा की । 'मैं या तो सुदर्शन के साथ सुख ही भोगूँगी और यदि ऐस योग न मिला तो उन उपायों के करने में ही मैं अपनी जिन्दगी पूरी कर दूँगी, जो सुदर्शन के शील-धर्म को नष्ट करने में कारण होंगे ।' इस

प्रकार अभिमान के साथ प्रतिज्ञा कर वह कुल-कलंकिनी वन-विहार के लिये आगे बढ़ी । उपवन में पहुँचकर उसने थोड़ी-बहुत जल-केलि की सही, पर उसका मन तो सुदर्शन के लिये तड़प रहा था; सो उसे वहाँ कुछ अच्छा न लगा । वह चिन्तातुर होकर अपने महल लौट आयी । यहाँ भी उसकी वही दशा रही । काम ने उसकी विउीलता और भी बढ़ा दी । वह तब अपनी सेज पर औंधा मुँह किये पड़ रही । उसकी यह दशा देखकर उसकी धाय ने उससे पूछा । बेटी! आज ऐसी तुझे क्या चिन्ता हो गयी, जिससे तुझे चैन नहीं है ।

अभयमती ने बड़े कष्ट से उससे कहा । माँ! मैं जिस निर्लज्ज्ता से आपसे बोलती हूँ, उसे क्षमा करना । मैं इस समय सर्वथा परवश हो रही हूँ और असम्भव नहीं कि जिस दशा में मैं अब हूँ, उसी में कुछ दिन और रहूँ तो मेरे प्राण चले जाएँ । इसलिए मुझे यदि तुम जिन्दा रखना चाहती हो, तो जिस किसी उपाय से बने एकबार मेरे प्यारे सुदर्शन को लाकर मुझसे मिलाओ । वही मुझे जिलाने के लिये संजीवनी है ।

रानी अभयमती की यह असाध्य वासना सुनकर उस धाय ने उसे समझाया । देवी! तूने बड़ी ही बुरी और घृणित इच्छा की है । जरा आँखें खोलकर अपने को देख तो सही कि तू कौन है? तेरा कुल कौन है? तू किसकी गृहिणी है? और ये निन्दनीय विचार, जो तेरे पवित्र कुल को कलंकित करनेवाले हैं, तेरे-तुझसी राजर ानी के योग्य हैं क्या? तू नहीं जानती कि ऐसे बुरे कामों से महान पाप का बन्ध होता है, अपना सर्वनाश होता है और सारे संसार में अपकीर्ति-अपवाद फैल जाता है । क्या तुझे इन बातों का भय नहीं? यदि ऐसा है तो बड़े ही दु:ख की बात है । कुलीन घराने की स्त्रियों के लिये पर-पुरुष का समागम तो दूर रहे, किन्तु उसका चिन्तन करना । उसे हृदय में जगह देना भी महा पाप है, अनुचित है और सर्वस्व नाश का कारण है । और तुझे यह भी मालूम नहीं कि सुदर्शन बड़ा शीलवान है । उसके एक पत्नीव्रत है । वह दूसरी स्त्रियों से तो बात भी नहीं करता । इसके सिवा यह भी सुना गया है कि वह पुरुषत्व-हीन है । भला, तब तू उसके साथ क्या सुख भोगेगी? और ऐसा सम्भव भी हो, तो इस पाप से तुझे दुर्गति के दु:ख भोगना पड़ेंगे । यह काम महान निंद्य और सर्वस्व नाश करनेवाला है; और एक बात है वह यह कि तेरा महल कोई ऐसा वैसा साधारण मनुष्य का घर नहीं, जो उसमें हर कोई बे-रोकटोक चला आवे । उसे बड़े-बड़े विशाल सात कोट घेरे हुए हैं । तब बता, उस शीलवान का यहाँ ले-आना कैसे संभव हो सकता है? इसलिए तुझे ऐसा मिथ्या और निन्दनीय आग्रह करना उचित नहीं । इससे सिवा सर्वनाश के तुझे कुछ लाभ नहीं है । मैंने जो तेरे हित के लिए इतना कहा । तुझे दो अच्छी बातें सुझाईं, इन पर विचार कर और अपने चंचल चित्त को वश करके इस दुराग्रह को छोड़ ।

अभयमती को धाय माँ का यह सब उपदेश कुछ नहीं रुचा । काम ने उसे ऐसी अन्धी बना दिया कि उसका ज्ञान-नेत्र मानों सदा के लिए जाता रहा । वह अपनी धाय से जरा जोर में आकर बोली । माँ, सुनो, बहुत कहने से कुछ लाभ नहीं । मेरा यह निश्चय है कि यदि मैं प्यारे सुदर्शन के साथ सुख न भोग सकी तो कुछ परवाह नहीं, इसलिए कि वह सुख पर-वश है । पर तब अपने प्यारे के वियोग में स्वाधीनता से मरते हुए मुझे कौन रोक सकेगा? मैं अपने प्यारे को याद करती हुई बड़ी खुशी के साथ प्राणविसज र्न करँगी । उन्हें प्रेम की बलि दूँगी ।

अभयमती का यह आग्रह देखकर उसकी धाय ने सोचा । यह किसी तरह अपने दुराग्रह को छोड़ती नहीं दिखती । तब लाचार हो उसने कहा । ना, ऐसा बुरा विचार न कर । थोड़ी धीरता रख । मैं इसके लिए कोई उपाय करती हूँ । इस प्रकार अभयमती को कुछ धीर बंधाकर वह एक कुम्हार के पास गई और उससे कहकर उससे सात पुरुष-प्रतिमाँए बनवायीं । उनमें से पड़वा की रात को एक प्रतिमा को अपने कन्धे पर रखकर वह राजमहल के दरवाजे पर आयी । अपना कार्य सिद्ध होने के लिए दरवाजे के पहरेदार को अपनी मुट्ठी में कर लेना बहुत जरूरी समझा और इसीलिए उसने यह कपट-नाटक रचा । वह दरवाजे पर जैसी आई, वैसी ही किसी से कुछ न कह-सुनकर भीतर जाने लगी । उसे भीतर घुसते देखकर पहरे के सिपाही ने रोककर कहा । माँ जी! आप भीतर न जाएँ । मैं आपको मना करता हूँ । इस पर बनावटी क्रोध के साथ उसने कहा । मूर्ख कहीं के, तू नहीं जानता कि मैं रानी के महल में जा रही हूँ । मुझे तू क्यों नहीं जाने देता? सिपाही भी फिर क्यों चुप होनेवाला था । उसने कहा । राँड! चल लम्बी हो! दिखता नहीं कि रात कितनी जा चुकी है? इस समय मैं तुझे किसी तरह नहीं जाने दे सकता । सिपाही के मना करने पर भी उसने उसकी कुछ न सुनी और आप जबरदस्ती भीतर घुसने लगी । सिपाही को गुस्सा आया सो उसने उसे एक धक्का मारा । वह जमीन पर गिर पड़ी । साथ ही उसके कन्धे पर रखी हुई वह पुरुष-प्रतिमा भी गिरकर टूट गयी । उसने तब एकदम अपना भाव बदलकर गुस्से के साथ उस पहरेदार से कहा । मूर्ख, ठहर, घबरा मत । मैं तुझे इसका मजा चखाती हूँ । तू नहीं जानता कि आज महारानी ने उपवास किया था । सो वे इस मिट्टी के बने कामदेव की पूजा कर आज जागरण करतीं और आनन्द मनातीं । सो तूने इसे फोड़ डाला । देख, अब सबेरे ही महारानी इस अपराध के बदले में तेरा क्या हाल करती हैं? तुझे सकुटुम्ब वे सूली पर चढ़ा देंगी । उसकी इस विभीषिका ने बेचारे उस पहरेदार के रोम-रोम को कँपा दिया । वह उसके पाँवों में पड़कर

गिड़गिड़ाने लगा । रोने लगा । माँ! क्षमा करो । मुझ गरीब पर दया करो । आज के बाद मैं कभी आपके काम में किसी प्रकार की बाधा न दूँगा । माँ! क्रोध छोड़ो । मेरे बाल-बच्चों की रक्षा करो । इस प्रकार कूटक पट से उस बेचारे को जाल में फँसाकर उसने अपनी मुट्ठी में कर लिया । अपने प्रयत्न में सफलता हो जाने से उसे बड़ा आनन्द हुआ । वह उस दिन बड़ी प्रसन्नता के साथ अपने घर गयी । इसी उपाय से उसने और भी छह पहरेदारों को छह रात में अपने काबू में कर लिया ।

यह पहले लिखा जा चुका है कि पुण्यात्मा सुदर्शन अष्मी और चतुर्दशी को घर-गृहस्थी का सब आरम्भ छोड़कर प्रोषधोपवास करता था और रात में कुटुम्ब, परिग्रह तथा शरीरादिक से ममत्व छोड़कर बड़ी धीरता के साथ श्मशान में प्रतिमा-योग द्वारा ध्यान करता था । आज अष्मी का दिन था । अपने नियम के अनुसार सुदर्शन ने सूर्यास्त होने के बाद श्मशान में जाकर मुनियों के समान प्रतिमा-योग धारण किया । सुदर्शन की यह श्मशान में आकर ध्यान करने की बात रानी अभयमती की धाय को पहले से ही ज्ञात थी । इसलिए कुछ रात बीतने पर सुदर्शन को राजमहल में लिवा ले-जाने को वह आयी । उसने सुदर्शन को देखा । वह इस समय अरहन्त भगवान के ध्यान में लीन हो रहा था । मच्छर आदि जीव बाधा न करें, इसलिए उसने अपने पर वस्त्र डाल रखा था । उससे वह ऐसा जान पड़ता था मानों कोई ध्यानी मुनि उपसर्ग सह रहे हैं । निश्चलता उसकी सुमेरुवत् थी । शरीर से उसने बिल्कुल मोह छोड़ दिया था । बड़े धीरज के साथ वह ध्यान कर रहा था । गंभीरता उसकी समुद्र सरीखी थी । क्षमा पृथ्वी सरीखी थी । हृदय उसका निर्मल पानी जैसा था । कर्मरूपी वन को भस्म करने के लिए वह अग्नि था । एकाकी था । शरीर भी उसका बड़ा ग्राण्डील बना था । उसे इस रूप में देखकर वह धाय आश्चर्य के मारे चकित हो गयी । तब वह ध्यान से किसी तरह चल जाये, इसके लिए उस दुष ने सुदर्शन से कुत्सित-विकार पैदा करनेवाले शब्दों में कहना शुरु किया । धीर, तू धन्य है । तू कृतार्थ हुआ, जो रानी अभयमती आज तुझ पर अनुरक्त हुई । मैं भी चाहती हूँ कि तू सैकड़ों सौभाग्यों का भोगनेवाला हो । उठ चल । रानी ने तुझसे प्रार्थना की है कि तू उसके साथ दिव्य भोगों को भोगे । आनन्द-विलास में अपनी जिन्दगी पूरी करे । इत्यादि बहुत देर तक उसने सुदर्शन को ध्यान से डिगाने के लिए प्रयत्न किया, परन्तु उसका सुदर्शन पर कुछ असर न हुआ । वह एक रत्तीभर भी ध्यान से न डिगा । यह देखकर सुदर्शन पर उसकी ईर्षा और अधिक बढ़ गयी । तब उस दुष्टिनी ने, उस पापिनी ने सुदर्शन के शरीर से लिपटकर, उसके मुँह में अपना मुँह देकर, तथा उसकी उपस्थ इन्द्री, नेत्र आदि से अनेक प्रकार की कुचेष्टाएँ । कामविकार पैदा करनेवाली क्रियाँए कर, नाना भाँति भय, लोभ बताकर उस पर उपसर्ग किया । उसके हृदय में काम की आग भड़काकर उसे ध्यान से चलाना चाहा; पर वह महा धीर-वीर, और दृढ़ निश्चयी सुदर्शन ऐसे दु:सह उपसर्ग होने पर भी न चला और मेरु की भाँति अडिग बना रहा । इतना सब कुछ करने पर भी उसे जब ऐसा निश्चल देखा, तब वह खीजकर उसे अपने कन्धे पर उठाकर चलती बनी । सुदर्शन तब भी अपने ध्यान में वैसा ही अचल बना रहा, मानों जैसा काठ का पुतला हो । उस काम के काल को धाय ने छुपाकर महारानी के सोने के महल में ला रखा । अभयमती सुदर्शन की अनुपम रूपस ुन्दरता देखकर बड़ी प्रसन्न हुई । उसने तब स्वयं सुदर्शन से प्रेम की भीख माँगी । वह बोली । प्राणनाथ! स्वामी! आप मुझे अत्यन्त प्यारे हैं । आपकी इस अलौकिक सुन्दरता को देखकर ही मैंने आप पर प्रेम किया है । मैं आप पर जी-जान से न्यौछावर हो चुकी हूँ । इसलिए हे प्राण प्यारे! मेरे साथ प्रेम की दो बातें कीजिए और कृपाकर मुझे संभोग-सुख से परितृप्त कीजिए । मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप मेरे साथ जिन्दगी के सफल करनेवाले भोगों को भोगें । । इत्यादि काम-विकार पैदा करनेवाले शब्दों से अभयमती ने पवित्र हृदयी सुदर्शन से बहुत कुछ प्रार्थना कर उसे उत्तेजित करना चाहा, पर सुदर्शन ने अपने शरीर और मन को तिलतुष मात्र भी न हिलाया चलाया । उसकी यह हालत देखकर अभयमती बड़ी खिद्गि हुई । उसने तब ईर्षा से चिढ़कर सुदर्शन को उठाकर अपनी सेज पर सुला लिया और अपनी कामलिप्सा पूर्ण हो, इसके लिए उसने नाना भाँति कुचेष्टाएँ करना शुरु किया । वह हाव-भाव-विलास करने लगी, गाने लगी, नाचने लगी, नाना भाँति का श्रृंगार कर उसे मोहने लगी, कटाक्ष फेंकने लगी, सुदर्शन का बारबार मुँह चूँमने लगी, उसके शरीर से लिपटने लगी, उसके हाथों को उठाउ ठाकर अपने स्तनों पर रखने लगी, अपनी और उसकी गुप्तेन्द्रिय से सम्बन्ध कराने लगी, उसकी गुप्तेन्द्रिय को अपने हाथों से उत्तेजित करने लगी । इत्यादि जितनी ब्रह्मचर्य के नष्ट करने और कामाग्नि की बढ़ानेवाली विकार चेष्टाएँ हैं, और जिन्हें यदि किसी साधारण पुरुष पर आजमाई जाय तो वह कभी अपनी रक्षा नहीं कर सकता, उन सबको करने में उसने कोई कसर नहीं छोड़ी । सुदर्शन उसके साथ विषय-सेवन करे, इसके लिए उसने उस पर बड़ा ही घोर उपसर्ग किया । पर धन्य सुदर्शन की धीरता और सहनशीलता को, जो उसने काम-विकार की भावना को रंचमात्र भी जगह न दी; किन्तु उसकी वैराग्य-भावना अधिक बढ़े, इसके लिए उसने यों विचार करना शुरु किया ।

स्त्रियों का शरीर जिन चीजों से बना है, उन पर वह इस प्रकार विचार करने लगा । यह शरीर हड्डियों से बना हुआ है । इसके ऊपर चमड़ा लपेटा हुआ है । इसलिए बाहर से कुछ साफ-सा मालूम पड़ता है, परन्तु वास्तव में यह साफ नहीं है । जितनी अपवित्र से अपवित्र वस्तुएँ संसार में हैं, वे सब इसमें मौजूद हैं । दुर्गन्ध का यह घर है । तब स्त्रियों के शरीर में ऐसी उत्तम वस्तु कौन सी है, जो अच्छी और प्रेम करने योग्य हो? कुछ लोग स्त्रियों के मुख की प्रशंसा करते हैं, पर यह उनकी भूल है । क्योंकि वास्तव में उसमें कोई ऐसी वस्तु नहीं जो प्रशंसा के लायक हो । वह रक्त-श्लेष्म से भरा हुआ है । उसमें लार सदा भरी रहती है । फिर किस वस्तु पर रीझकर उसे अच्छा कहें? क्या उस पर लपेटे हुए कुछ गोरे चमड़े पर? नहीं । उसे भी जरा ध्यान से देखो तब जान पड़ेगा कि वह भी उन चीजों से जुदा नहीं है । स्त्रियों के स्तनों को देखिए तो वे भी रक्त और माँस के लोंदे हैं । आँखों में ऐसी कोई खूबी नहीं जो बुद्धिमान लोग उन पर रीझें । उनका उदर देखिए तो वह भी विष, मल, मूत्र आदि दुर्गन्धित वस्तुओं से भरा हुआ, महा अपवित्र और बिलबिलाते कीड़ों से युक्त है । तब बुद्धिमान लोग उसकी किस मुद्दे पर प्रशंसा करें? रहा स्त्रियों का गुप्तांग, सो वह तो इन सबसे भी खराब है । उसमें मूत्र आदि अपवित्र वस्तुएँ स्रवती हैं और इसीलिए वह ग्लानि का स्थान है, बदबू मारता है, और ऐसा जान पड़ता है मानों नारकियों के रहने का बिल हो । तब वह भी कोई ऐसी वस्तु नहीं जिस पर समझदार लोग प्रेम कर सकें । स्त्रियों के शरीर में जो-जो वस्तुएँ हैं, उन पर जितना-जितना अच्छी तरह विचार किया जाय तो सिवा उपेक्षा करने के कोई ऐसी अच्छी वस्तु न देख पड़ेगी, जिससे प्रेम किया जाय ।

इसके सिवा यह परस्त्री है और परस्त्री को मैं अपनी माता, बहिन और पुत्री के समान गिनता हूँ । उनके साथ बुरा काम करना महान पाप का कारण है और इसीलिए आचार्यों ने परस्त्री को दर्शन-ज्ञान आदि गुणों की चुरानेवाली और धर्म की नाश करनेवाली, नरकों में ले जाने का रास्ता और पाप की खान, कीर्ति की नष्ट करनेवाली और वध-बन्धन आदि दु:खों की कारण बतलाया है और सचमुच परस्त्री बड़ी ही निन्दनीय वस्तु है । जहरीली नागिन को, जो उसी समय प्राणों को नष्ट कर दे, लिपटा लेना कहीं अच्छा है, पर इस सातवें नरक में ले जानेवाली दीपिका का तो हंसी विनोद से भी छूना अच्छा नहीं । आज मुझे इस बात की बड़ी खुशी है कि मेरा शुद्ध शीलधर्म सफल हुआ । इन उपद्रवों को सहकर भी वह अखण्डित रहा । । इस प्रकार पवित्र भावनाओं से अपने हृदय को अत्यन्त वैराग्यमय बनाकर बड़ी निश्चलता के साथ सुदर्शन शुभध्यान करने लगा और अभयमती द्वारा किये गये सब उपद्रवों को । सब विकारों को जीतकर बाह्य और अन्तरंग में वज्र की तरह स्थिर और अभेद्य बना रहा ।

अभयमती अपने इस प्रकार नाना भाँति विकार-चेष्टा के करने पर भी सुदर्शन को पक्का जितेन्द्री और मेरु के समान क्षोभरहित निश्चल देखकर बड़ी उद्विग्न हुई-बड़ी घबरायी । तृण-रहित भूमि पर गिरी अग्नि जैसे निरर्थक हो जाती है, नागदमनी नाम की औषधि से जैसे सर्प निर्विष हो जाता है, उसी तरह रानी अभयमती का झूठा अभिमान ब्रह्मचारी सुदर्शन के सामने चूर-चूर हो गया । उसके साथ वह बुरी से बुरी चेष करके भी उसका कुछ न कर सकी । तब चिढ़कर उसने अपनी धाय को बुलाकर कहा । जहाँ से तू इसे लायी है, वहीं जाकर इसी समय इसे फैंक आ । उसने बाहर आकर देखा तो उस समय कुछ-कुछ उजाला हो चुका था । उसने जाकर रानी से कहा । देवीजी! अब तो समय नहीं रहा-सवेरा हो चुका है । इसे अब मैं नहीं ले जा सकती ।

सच है, जो दुर्बुद्धि लोग दुराचार करते हैं, वे अपना सर्वनाश कर क्लेश भोगते हैं और पापबन्ध करते हैं । इसके सिवा उन्हें और कोई अच्छा फल नहीं मिलता ।

इस संकट दशा को देखकर रानी बड़ी घबराई । उससे उसे अपने पर बड़ी भारी विपत्ति आती जान पड़ी । उसने तब अपनी रक्षा के लिए एक कुटिलता की चाल चली । किसी की बुराई ईर्षा, द्वेष, मत्सरता आदि से सम्बन्ध न रखनेवाले धीर सुदर्शन को उसने कायोत्सर्ग से खड़ा कर और अपनी शरीर में नखों, दाँतों आदि के बहुत से घाव करके वह एकदम बड़े जोर से किल्कारी मारकर रोने लगी और लोगों को पुकारने लगी, दौड़ो! दौड़ो!! यह पापी मुझ शीलवती का सतीत्व नष्ट करना चाहता है । इस दुराचारी ने काम से अन्धे होकर मेरा सारा शरीर नोंच डाला । अभयमती का आक्रन्दन सुनकर बहुत से नौकर-चाकर दौड़ आये । उनमें से कुछ ने तो सुदर्शन को गिर्यतार कर बाँध लिया और कुछ ने पहुँचकर राजा से फरियाद की । महाराज! कामान्ध हुए सुदर्शन ने आपके रनवास में घुसकर रानीजी की बड़ी दुर्दशा की । उनके सारे शरीर को उस पापी ने नखों से नोंचकर लहूलुहान कर दिया । राजा ने जाकर स्वयं भी इस घटना को देखा । देखते ही उनके क्रोध का कुछ ठिकाना न रहा । उसकी कुछ विशेष तपास न कर अविचार से उन्होंने नौकरों को आज्ञा दी कि । जाओ इस कामान्ध हुए अन्यायी सेठ को मृत्युस्थान पर ले जाकर मार डालो! राजा की आज्ञा पाते ही वे लोग सुदर्शन को केश पकड़कर खींचते हुए मारने की

जगह ले गये । सुदर्शन के मारे जाने की खबर जैसी ही चारों ओर फैली कि सारे शहर में हा-हा कार मच गया । क्या स्वजन और क्या परजन, सभी बड़े दुखी हुए । सब उसके लिए रो-रोकर कहने लगे कि हे सुभग! आज तुझ-समान सत्पुरुष के हाथों से ऐसा कौन सा अकारज हो गया जिससे तुझे मौत के मुँह में जाना पड़ा! हाय! तुझ-समान धर्मात्मा को और प्राणदण्ड? यह कभी सम्भव नहीं कि तू ऐसा भयंकर पाप करे । पर जान पड़ता है दैव आज तुझसे सर्वथा प्रतिकूल है । इसीलिए तुझे यह कठोर दण्ड भोगना पड़ेगा ।

सुदर्शन, ले जाकर मृत्यु स्थान पर खड़ा किया गया । इतने में एक जल्लाद ने उसके कामदेव से कहीं बढ़कर सुन्दर और फूल से कोमल शरीर में तलवार का एक वार कर ही दिया । पर क्या आश्चर्य है कि उसके महान शीलधर्म के प्रभाव से वह तलवार उसके गले का एक दिव्य हार बन गयी । इस आश्चर्य को देखकर उस जल्लाद को अत्यन्त ईर्षा बढ़ गयी । उस मूर्ख ने तब एक पर एक ऐसे कोई सैकड़ों वार सुदर्शन के शरीर पर कर डाले । पर धन्य सुदर्शन के व्रत का प्रभाव, जो वह जितने ही वार किये जाता था, वे सब दिव्य पुष्पमाला के रूप में परिणत होते जाते थे । इतना सब कुछ करने पर भी सुदर्शन को कोई किसी तरह का कष्ट न पहुँचा सका ।

उधर सुदर्शन की इस सुदृढ़ शील-शक्ति के प्रभाव से देवों के आसन सहसा कम्पायमान हो उठे । उनमें से कोई धर्मात्मा यक्ष इस आसनकम्प से सुदर्शन पर उपसर्ग होता देखकर उसे दूर करने के लिए शीघ्र ही मृत्यु-स्थल पर आ उपस्थित हुआ और उस शरीर से मोह छोड़े महात्मा सुदर्शन को बार-बार नमस्कार कर उसने उन मारनेवालों को पत्थर के खम्भों की भाँति कील दिया । सच है, शील के प्रभाव से धर्मात्मा पुरुषों को क्या-क्या नहीं होता । और तो क्या, परन्तु जिसका तीन लोक में प्राप्त करना कठिन है, वह भी शीलव्रत के प्रभाव से सहसा पास आ जाता है । इस शील के प्रभाव से देवता लोग, नौकर-चाकरों की तरह चरणों की सेवा करने लगते हैं और सब विघ्न-बाधाँए नष्ट हो जाती हैं । जो सच्चे शीलवान् हैं, उन्हें देव, दानव, भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी आदि कोई कष्ट नहीं पहुँचा सकता । तब बेचारे मनुष्य की तो बात ही क्या? वह कौन गिनती में?

सुदर्शन ने जो दृढ़ शीलव्रत का पालन किया, उसके माहात्म्य से एक यक्ष ने उसके सब उपसर्ग-सब विघ्न क्षणमात्र में नष्ट कर उसकी पूजा की । इसका मतलब यह हुआ कि शील के प्रभाव से दु:ख नष्ट होते हैं और सब प्रकर का सुख प्राप्त होता है । तब भव्यजनों, अपनी आत्मशुद्धि के लिए इस परम पवित्र शीलव्रत को दृढ़ता के साथ तुम भी धारण करो न, जिससे तुमको सब सुखों की प्राप्ति हो । देखो, यह शील मुक्तिरूपी स्त्री को बड़ा प्रिय है और संसार के परिभ्रमण को मिटानेवाला है । जो सुशील हैं, सत्पुरुष हैं, वे इस शीलधर्म को बड़ी दृढ़ता से अपनाते हैं । इसका आश्रय लेते हैं, शीलधर्म से मोक्ष का सुख मिलता है । उस पवित्र शीलधर्म के लिए मैं नमस्कार करता हूँ । शील के बराबर कोई सुधर्म को प्राप्त नहीं करा सकता । जहाँ शील है, समझो कि वहाँ सब गुण हैं और हे शील, मैं तुझमें अपने मन को लगाता हूँ, तू मुझे मुक्ति में ले चल ।

उन मुनिराजों की मैं स्तुति करता हूँ जो पवित्र बुद्धि के धारी और शीलव्रतरूपी आभूषण को पहने हुए हैं । इन्द्र, चक्रवर्ती आदि से पूज्य और काम-शत्रु के नाश करनेवाले हैं । स्वयं संसार-समुद्र से पार को पहुँच चुके हैं और दूसरों को पहुँचाकर मोक्ष का सुख देते हैं तथा जिन्होंने कामदेव-पद के धारी होकर कर्मों का नाश किया है, वे मुझे भी ऐसा पवित्र आशीर्वाद दें कि जिससे मैं शीलव्रत को बड़ी दृढ़ता के साथ धारण कर सकूँ ।

सुदर्शन का धर्म-श्रवण

सुदर्शन का धर्म-श्रवण

कथा :

शीलरूपी समुद्र में निमग्न और मोक्ष को प्राप्त हुए सुदर्शन आदि महात्माओं को मैं नमस्कार करता हूँ, वे मुझे सुदृढ़ शीलधर्म की प्राप्ति करावें ।

किसी ने जाकर राजा से कहा कि । महाराज, जिन नौकरों को आपने सुदर्शन को मार आने के लिए आज्ञा दी थी, सुदर्शन ने उनको मन्त्र से कील दिया । वे सब पत्थर की तरह मृत्युस्थल पर कीले हुए खड़े हैं । सुनते ही राजा को बड़ा क्रोध आया । उसने तब और बहुत से नौकरों को सुदर्शन को मार डालने को भेजा । उस यक्ष ने उन सबको भी पहले की तरह कील दिया । उनका कील देना भी जब राजा को ज्ञात हुआ, तब वह क्रोध से अधीर होकर स्वयं अपनी सेना लेकर सुदर्शन से युद्ध करने को पहुँचा । उस यक्ष को भी भला तब कैसे चैन पड़ सकता था ।

राजा के आते ही उसने भी मायामयी एक विशाल सेना देखते-देखते तैयार कर ली और युद्ध करने को वह रणभूमि में उतर आया । दोनों सेना में व्यूह-रचना हुई । दोनों ओर के वीर योद्धा हाथी, घोड़े आदि पर चढ़कर युद्धभूमि में उतरे । यक्ष सुदर्शन की रक्षा के लिए विशेष सावधान हुआ । दोनों सेना की मुठभेड़ हुई । बड़ा भयंकर और मृत्यु का कारण संग्राम होने लगा । बहुत देर हो गयी, परन्तु जयश्री ने किसी का साथ न दिया । दोनों ओर की सेना कुछ-कुछ पीछे हटी । सेना को पीछे हटती देखकर राजा और यक्ष दोनों ही वीर अपने-अपने हाथी पर चढ़कर आमने-सामने हुए । राजा को सामने देखकर यक्ष ने उसके हित की इच्छा से कहा । तू जानता है कि मैं कौन हूँ और मेरा बल कितना है? यदि नहीं जानता है तो सुन । मैं मनुष्य नहीं, किन्तु विक्रियाऋद्धि का धारी देव हूँ और मेरा बल प्रचण्ड है । मेरे सामने तू मनुष्य-जाति का एक छोटा-सा कीड़ा है । तब तू विचार देख कि मेरे बल के सामने तू कहाँ तक ठहर सकेगा? इसलिए मैं तुझे समझाता हूँ कि तू व्यर्थ ही मेरे हाथों से न मर! तू तो महात्मा सुदर्शन की चिन्ता छोड़कर सुख से राज्य कर ।

राजा क्षत्रिय था और क्षत्रियों के अभिमान का क्या ठिकाना! उसने तब बड़े गर्व के साथ उस यक्ष से कहा । तू यक्ष है । विक्रियाऋद्धि का धारी देव है तो इसमें आश्चर्य करने की कौन बात हुई? पर साथ ही तू क्या यह भूल गया कि राजाओं के तुझसे हजारों देव नौकर हो चुके हैं । गुलाम रह चुके हैं । फिर तुझे अपने तुच्छ देवपद का इतना अभिमान? यह सचमुच बड़े आश्चर्य की बात है और तुझमें अपार बल है तो उसे बता, केवल गाल फुलाने से तो कोई अपार बली नहीं हो सकता । नहीं, तो देख, मैं तुझे अपनी भुजाओं का पराक्रम बतलाता हूँ । राजा की एक देव के सामने इतनी धीरता! यह देखकर यक्ष भी चकित रह गया । इसके बाद उसने कुछ न कहकर राजा के साथ भयंकर युद्ध छेड़ ही दिया । थोड़ी देर तक युद्ध होता रहा, परन्तु जब उसका कुछ फल न निकला तो राजा ने क्रोध में आकर यक्ष के हाथी को बाणों से खूब वेध दिया । बाणों की मार से हाथी इतना जर्जरित हो गया कि उससे अपना स्थूल शरीर सम्हाला न जा सका । वह पर्वत की तरह धड़ाम से पृथ्वी पर गिरकर धराशायी हो गया । राजा के इस बढ़े हुए प्रताप को देखकर यक्ष को बड़ा आश्चर्य हुआ । वह तब दूसरे हाथी पर चढ़कर युद्ध करने लगा । अबकी बार उसने राजा के हाथी की वैसी ही दशा कर डाली जैसी राजा ने उसके हाथी की थी । तब राजा भी दूसरे हाथी पर चढ़कर युद्ध करने लगा । और उसने यक्ष के ध्वजा-छत्र को फाड़कर हाथी को भी मार डाला । यक्ष तब एक बड़े भारी रथ पर सवार होकर युद्ध करने लगा । दोनों का बड़ा ही घोर युद्ध हुआ । दोनों अपनी-अपनी युद्ध-कुशलता और शर-निक्षेप में बड़ी ही कमाल करते थे । लोगों को उसे देखकर आश्चर्य होता था । बेचारे डरपोक-युद्ध के नाम से डरनेवाले लोगों के डर का तो उस समय क्या पूछना? वे तो मारे डर के मर जाते थे । दोनों के इस महा युद्ध में राजा ने अपने तीक्ष्ण बाणों से यक्ष के रथ को छिद्रा-भिद्रा कर डाला । यक्ष तब जमीन पर ही लड़ने लगा । अब भी उसे सुरक्षित देखकर राजा को बड़ी वीरश्री चढ़ी । उसने अपना खड्ग निकालकर इस जोर से यक्ष के सिर पर मारा कि उसका सिर भुट्टे सा दो टुकड़े होकर अलग जा गिरा । यक्ष ने तब उसी समय विक्रिया से अपने दो रूप बना लिये । राजा ने उन दोनों को भी काट दिया । यक्ष ने तब चार रूप बना लिये । इस प्रकार राजा ज्यों-ज्यों उन बहु संख्यक यक्षों को काटता जाता था, त्यों-त्यों वह अपनी दूनी-दूनी संख्या बढ़ाता जाता था । फल यह हुआ कि थोड़ी देर में सारा युद्धस्थल केवल यक्षों ही यक्षों से व्याप्त हो गया । जिधर आँख उठाकर देखो, उधर यक्ष ही यक्ष देख पड़ते थे । अब तो राजा घबराया । भय से काँपने लगा । आखिर उससे वह भयंकर दृश्य न देखा गया । सो वह युद्धस्थल से भाग खड़ा हुआ । उसे भागता देखकर वह यक्ष भी उसके पीछे-पीछे भागा और राजा से बोला ।

अरे! दुरात्मन्, देखता हूँ, अब तू भागकर कहाँ जाता है? जहाँ तू जाँगा, वहाँ मैं तुझे मार डालूँगा । हाँ, एक उपाय तेरी रक्षा का है और वह यह कि यदि तू महात्मा सुदर्शन की शरण जाय तो मैं तुझे जीवनदान दे सकता हूँ । इसके सिवा और कोई उपाय तेरे जीने का नहीं है । भय के मारे मर रहा राजा जब लाचार होकर सुदर्शन की शरण में पहुँचा और सुदर्शन से गिड़गिड़ा कर प्रार्थना करने लगा । कि महापुरुष! मुझे बचाइए, मेरी रक्षा कीजिए । मैं अपनी रक्षा के लिए आपकी शरण में आया हूँ । यह कहकर राजा सुदर्शन के पाँवों में गिर पड़ा । सुदर्शन ने तब हाथ उठाकर यक्ष को रोका और उससे पूछा । भाई! तू कौन है और यहाँ क्यों आया? तब उस यक्ष ने सुदर्शन को बड़ी भक्ति से नमस्कार कर और बड़े सुन्दर शब्दों में उसकी प्रशंसा करना आरम्भ की । वह बोला । हे बुद्धिवानों के शिरोमणि! तू धन्य है, तू बड़े-बड़े महात्माओं का गुरु है और धीरों में महाधीर है, धर्मात्माओं में महा धर्मात्मा और गुणवानों में महान गुणी है, चतुरों में महा चतुर और श्रावकों में महान् श्रावक है । तेरे समान गम्भीर, गुणों का समुद्र, ब्रह्मचारी, लोकमान्य और पर्वत के समान अचल कोई नहीं देखा जाता । तुझे स्वर्ग के देवता भी नमस्कार करते हैं, तब औरों की तो बात ही क्या । यह तेरे ही शील का प्रभाव था, जो हम लोगों के आसन

कम्पायमान हो गये । देवता आश्चर्य के मारे चकित रह गये । सारे लोक में एक विलक्षण क्षोभ हो उठा-सब घबरा गये । तू ही काम, क्रोध, लोभ, मान, माया आदि शत्रुओं और पंचेन्द्रियों के विषयों पर विजय प्राप्त करनेवाला संसार का एक महान विजेता और दु:सह उपसर्गों को सहनेवाला महान बली है । तेरे ही शीलरूपी मन्त्र से आकृष्ट होकर यहाँ आये मैंने तेरा उपसर्ग दूर किया । मुझे भी इस महान धर्म की प्राप्ति हो, इसलिए हे धीर! हे गुणों के समुद्र! और कष्ट के समय भी क्षोभ को न प्राप्त होनेवाले । न घबरानेवाले हे सच्चे ब्रह्मचारी! तुझे नमस्कार है । उस धर्मात्मा यक्ष ने इस प्रकार सुदर्शन की प्रशंसा और पूजा कर उस पर फूलों की वर्षा की, मन्द-सुगन्ध हवा चलाई और नाना भाँति के मनोहर बाजों के शब्दों से सारा आकाश पूर दिया । इसके सिवा उसने और भी कितनी ऐसी बातें कीं जो आश्चर्य पैदा करती थीं । इन बातों से उस यक्ष ने बहुत पुण्यबन्ध किया ।

इसके बाद वह यक्ष अभयमती की जितनी नीचता और कुटिलता थी, वह सब राजा और सर्व साधारण लोगों के सामने प्रगट करके, तथा राजा की जितनी सेना उसकी माया से हत हुई थी, उसे जिलाकर और सुदर्शन के चरणों को बारंबार नमस्कार कर स्वर्ग चला गया ।

अभयमती को जब यह सुन पड़ा कि एक देवता ने सुदर्शन की रक्षा कर ली और अपनी जितनी कुटिलता और नीचता थी, उसे राजा पर प्रगट कर दिया, तब वह राजा के भय से गले में फाँसी लगाकर मर गयी । उसने पहले जो कुछ पुण्य उपार्जन किया था, उसके फल से वह पाटलीपुत्र या पटना में एक दुष्ट व्यन्तरी हुई और वह अभयमती की धाय, जो सुदर्शन को श्मशान से लाई थी, सुदर्शन के शील के प्रभाव को देखकर राजा के भय से भागकर पटना में आ गयी । वह यहाँ एक देवदत्ता नाम की वेश्या के पास ठहरी । दो-चार दिन बीतने पर उसने उस वेश्या से अपना सब हाल कहकर कहा । देखोजी, बुद्धिमान सुदर्शन बड़ा ही अद्भुत ब्रह्मचारी है! उसने कपिला-सी चतुर और सुन्दर स्त्री को झूठ-मूठ कुछ का कुछ समझकर ठग लिया । एक दिन वह ध्यान में बैठा था, उस समय मैंने अनेक विकार चेष्टाएँ कीं, तो भी मैं उसे किसी तरह ध्यान से न डिगा सकी । इसी तरह रानी अभयमती ने उस पर मोहित होकर अनेक उपाय किये और अनेक उपद्रव किये, परन्तु वह भी उसके ब्रह्मचर्य को नष्ट न कर सकी और आखिर मर ही गयी । इस प्रकार स्त्रियों द्वारा किये गये सब उपसर्गों को सहकर वह अपने शील-धर्म में बड़ा दृढ़ बना रहा । ऐसा विजेता मैंने कोई नहीं देखा ।

यह सुनकर दुरभिमानिनी देवदत्ता बोली । तूने कहा, यह सब ठीक ही है । क्योंकि वेश्या को छोड़कर और स्त्रियाँ उसके मन को किसी प्रकार विचलित नहीं कर सकतीं । वह कपिला ब्राह्मणी, जो भीख माँग-माँगकर पेट भरती है, लोगों के मन को मोहनेवाले हाव-भाव-विलासों को क्या जाने? और वह सदा रनवास में रहनेवाली बेचारी रानी अभयमती स्त्रियों के दुर्धर चरित्रों, पुरुषों के लक्षणों और दासीपने के कामों को क्या समझे? इस प्रकार उन सबकी हँसी उड़ाकर मूर्खिणी देवदत्ता ने उस धाय के सामने प्रतिज्ञा की । कि देख, तुम लोगों ने भी उस धीर और नर-श्रेष्ठ को चाहा और उसे प्राप्त करने का यत्न किया, पर वह तुम्हारा चाहना और वह यत्न करना नाम मात्र का था । उसे वास्तव में मैं चाहती हूँ । मेरा उस पर सच्चा प्रेम है और इसीलिए देख, जिस तरह होगा मैं अपनी सब शक्तियों को लगाकर उसका ब्रह्मचर्य नष्ट करँगी और अवश्य नष्ट करँगी ।

इधर राजा, सुदर्शन के सामने अपनी निन्दा और उसकी प्रशंसा करने लगा । हे महापुरुष! तू बड़ा ही धीरजवान् है । पर्वत की धीरता को भी तूने जीत लिया । तू बड़ा शीलवान धर्मात्मा है । संसार का पूज्य महात्मा है । हे वैश्य-कुल-भूषण! मुझ अविवेकी दुरात्मा ने स्त्रियों का चरित न जानकर तेरा बड़ा भारी अपराध किया । मैं तुझसे प्रार्थना करता हूँ कि अपनी दिव्य क्षमा मुझे दान कर, मेरे सब अपराधों को तू क्षमा कर । हे संसार में श्रेष्ठता पाये हुए, हे देवों द्वारा पूजे जानेवालो और हे सच्चे सुशील! मुझे विश्वास है कि तू मेरी प्रार्थना स्वीकार कर मुझे अवश्य क्षमा करेगा । इसके सिवा मैं तुझसे एक और प्रार्थना करता हूँ । वह यह कि मैं तेरी इस दृढ़ता पर बहुत ही प्रसन्न हुआ हूँ, इसलिए मैं तुझे अपना आधा राज्य भेंट करता हूँ । तू इसे स्वीकार कर ।

इसके उत्तर में पुण्यात्मा सुदर्शन ने निस्पृहता के साथ कहा कि राजन्! चाहे कोई मेरा शत्रु हो या मित्र, मेरी तो उन सबके साथ पहले ही से क्षमा है । मेरा किसी पर क्रोध नहीं । सिर्फ क्रोध है तो मेरे आत्म-शत्रु क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, मोह और इन्द्रियों पर, और उन्हें नष्ट करने का मैं सदा प्रयत्न भी करता रहता हूँ । यही कारण है कि मैंने जिनभगवान का उपदेश किया हुआ और सुखों का समुद्र उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव आदि दसलक्षणरूप धर्म ग्रहण कर रखा है और इस समय जो मुझ पर उपद्रव हुए । मुझे कष्ट दिया गया, यह सब तो मेरे पूर्व पापकर्मों का उदय है । अथवा यों समझिँ कि यह भी मेरे महान पुण्य का उदय था, जो मेरे ब्रह्मचर्य-व्रत की परीक्षा हो गयी । राजन्! मेरा तो विश्वास है कि दु:ख या सुख, गुण या दुर्गुण, दूषण या भूषण, आदि जितनी बातें हैं, वे सब पूर्व कमाये

कर्मों से होती हैं । उन्हें छोड़कर इन बातों को कोई नहीं कर सकता । तब मुझ पर जो उपद्रव हुए, उसमें तुम तो निमित्तमात्र हो । इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं । अथवा तुम तो मेरे उपकारक हुए । क्योंकि जब मैं श्मशान भूमि से लाया गया, तब ही से मैंने नियम कर लिया था कि यदि इस घोर उपसर्ग में वध-बन्धन आदि से मेरी मौत हो जाय तब तो मैं मोक्ष-सुख की प्राप्ति के लिए इसी समय से ही चार प्रकार के आहार का त्याग करता हूँ और पूर्व पुण्य से यदि इस समय मेरी रक्षा हो जाय तो मैं फिर जिनदीक्षा अंगीकार करके ही भोजन करँगा । इसलिए हे महाराज! अब तो परम सुख का कारण जिनदीक्षा ही मैं ग्रहण करँगा । मुझे तो उस मोक्ष के राज्य का लोभ है । फिर मैं आपके इस क्षणस्थायी राज्य को लेकर क्या करँगा? इस प्रकार सन्तोषजनक उत्तर देकर सुदर्शन, राजा वगैरह के मना करने पर भी जिनमन्दिर पहुँचा । उसके साथ राजा वगैरह भी गये । वहाँ उसने विघ्नों की नाश करनेवाली और सब प्रकार का सुख देनेवाली रत्नमयी जिन प्रतिमाओं की बड़ी भक्ति से पूजावन्दना की । इसके बाद वह तीन ज्ञान के धारी और संसार का हित करनेवाले विमलवाहन मुनिराज को भक्तिपूर्वक नमस्कार कर अपना मन शान्त करने के लिए उनसे धर्मोपदेश सुनने को बैठ गया । उसके साथ राजा आदि भी बैठ गये । मुनिराज ने उसे धर्मामृत का प्यासा । धर्मोपदेश सुनने को उत्कण्ठित देखकर धर्मवृद्धि दी और इस प्रकार धर्मोपदेश करना शुरु किया । सुदर्शन! तू बुद्धिमान् है और इसीलिए मैं तुझे मोक्षसुख देनेवाले जिस मुनिधर्म का उपदेश करँ, उसका स्वरूप समझकर तू उसे ग्रहण कर । उस धर्म की कल्पवृक्ष के साथ तुलना कर मैं तुझे स्पष्ट समझा देता हूँ । जरा ध्यान से सुन । इस धर्म से तेरे सब उपद्रवक ष्ट नष्ट होंगे और शिव-सुन्दरी की तुझे प्राप्ति होगी । इसमें किसी
तरह का सन्देह नहीं है ।

जैसे वृक्ष का मूल भाग होता है, वैसे इस धर्मरूपी कल्पवृक्ष का मूल है क्रोधादि से नष्ट न होनेवाली पृथ्वी समान श्रेष्ठ क्षमा । वृक्ष पानी से सींचा जाता है और यह धर्मरूपी कल्पवृक्ष उत्तम मार्दवरूपी अमृत भरे घड़ों से, जो सारे जगत को सन्तुष करते हैं, सींचा जाकर प्रतिदिन बढ़ता है । वृक्ष के चारों ओर चबूतरा बना दिया जाता है, इसलिए कि वह हवा वगैरह के धक्कों से न गिरेप ड़े और यह धर्मरूपी वृक्ष उत्तम आर्जवरूपी सुदृढ़ चबूतरे से युक्त है, इसलिए इसे माया-प्रपंच की प्रचण्ड वायु तोड़-मोड़ नहीं सकती । यह सदा एक सा स्थिर बना रहता है । वृक्ष के स्कन्ध होता है और यह धर्म-कल्पवृक्ष सत्यरूपी स्कन्धवाला है, जिसे सब पसन्द करते हैं और इसी कारण यह असत्यरूपी कुठार से काटा न जाकर बड़ा मजबूत हो जाता है । वृक्ष के डालियाँ होती हैं और उनसे वह बहुत विस्तृत हो जाता है । यह धर्मरूपी कल्पवृक्ष निर्लोभतारूप डालियों से शोभित है; और इसीलिए फिर इसका लोभरूपी भील आश्रय नहीं ले पाते । यह चारों ओर खूब बढ़ जाता है । वृक्ष, पत्तों से युक्त होकर लोगों के गर्मी का कष्ट दूर करता है और यह धर्म-कल्पवृक्ष दो प्रकार संयमरूप पत्तों से, जो सत्पुरुषों का संसार-ताप मिटाते हैं, युक्त है । इसे असंयमरूपी वायु का वेग कुछ हानि नहीं पहुँचा सकता । यह सदा सघन और शीतलता लिए रहता है । वृक्ष फूलों से युक्त होता है और यह धर्मक ल्पवृक्ष बारह प्रकार तपरूपी सुगन्धित फूलों से शोभित है । संसार का आताप मिटानेवाला है और सबको प्रिय है । वृक्ष परिग्रह फलों का त्याग करता है और क्यारी में आये दान-पानी की अपनी वृद्धि के लिए रक्षा करता है और धर्म-कल्पवृक्ष परिग्रह । धन, धान्य, दासी, दास, सोना, चाँदी आदि का त्याग करता है और आहार, औषधि, अभय और ज्ञान, इन चार प्रकार के दानों की रक्षा करता है । इन दानों को देता है । इसलिए वह तबतक बढ़ता ही जाता है, जबतक कि मोक्ष न प्राप्त हो जाय । वृक्ष ऋतु का सम्बन्ध पाकर फलते हैं और उन फलों को लोगों को देते हैं; और धर्मक ल्पवृक्ष आ्चन्य-परिग्रहरहितपनारूप ऋतु का सम्बन्ध पाकर निर्ममत्व-भाव से लोगों को स्वर्ग-मोक्ष का फल देता है । वृक्ष अपने स्थूल शरीर से बढ़कर परिपूर्णता लाभ करता है और मनचाहे सुन्दर फलों को देता है और धर्म-कल्पवृक्ष ब्रह्मचर्यरूपी तेजस्वी शरीर से बड़ा होकर परिपूर्णता लाभ करता है और धर्मात्माओं को सर्वार्थसिद्धि आदि का सुख देता है । सुदर्शन! इस प्रकार उत्तम क्षमादि, दसलक्षणमय धर्म-कल्पवृक्ष का तुझे मोक्षरूपी फल की प्राप्ति के लिए सेवन करना चाहिए । यह मोह संसार के जीवों को महान कष्ट देनेवाला है । इसलिए वैराग्य-खड्ग से इसे मारकर पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति और मुनियों के मूलगुण तथा उत्तरगुण, इसके सिवा रत्नत्रय आदिक तप,जो धर्म के मूल हैं, इन सबको तू धारण कर । यह यतिधर्म महान सुख का कारण है ।

मैं चाहता हूँ कि तुझसे बुद्धिमान धर्म को सदा धारण करें । उसका आश्रय लें । धर्म के द्वारा मोक्षमार्ग का आचरण करें । धर्म प्राप्ति के लिए दीक्षा लें । तुझे खूब याद रखना चाहिए कि एक धर्म को छोड़कर कोई तुझे मोक्ष का सुख प्राप्त नहीं करा सकता । इसलिए तू धर्म के मूल को प्राप्त करने का यत्न कर । धर्म में सदा स्थिर रह और धर्म से यह प्रार्थना कर कि हे धर्म! तू मुझे मोक्ष प्राप्त करा । क्योंकि यही

धर्म इन्द्र, चक्रवर्ती आदि का पद और मोक्ष का देनेवाला है, अनन्त गुणों का स्थान और संसार का भ्रमण मिटानेवाला है, पापों का नाश करनेवाला और सब सुखों का देनेवाला है, दु:खों का नाशक और मनचाही वस्तुओं को देनेवाला है । इस धर्म को बड़े आदर से मैं स्वीकार करता हूँ । वह मुझे मोक्ष का सुख दे ।

सुदर्शन और मनोरमा के भव

सुदर्शन और मनोरमा के भव

कथा :

मैं सुख-मोक्ष प्राप्ति के लिए पाँचों परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ । वे धर्मतीर्थ के चलानेवाले, जगत्पूज्य और सब सुखों के देनेवाले हैं ।

सुदर्शन, विमलवाहन मुनिराज के मुख-चन्द्रमा से झरा धर्मामृत पीकर बहुत सन्तुष्ट हुआ । इसके बाद उसने उनसे पूछा । योगीराज! मैं जानता हूँ कि स्नेह-प्रेम धर्म में बाधा करनेवाला है, पर तो भी न जाने क्यों मनोरमा पर मेरा अधिक प्रेम है? इसका कारण कृपाकर आप बतलाइए और यह भी बतलाइए कि मैं किस पुण्य के उदय से ऐसा धनी, सुन्दर और कामदेव-पद का धारी हुआ?

सुदर्शन के इस प्रश्न को सुनकर मुनिराज ने अपनी दिव्य वाणी द्वारा पुण्य-पाप का फल बतलाते हुए यों कहना आरम्भ किया । इसलिए कि उससे भव्यजनों का उपकार हो । सुदर्शन! तेरी पूर्व जन्म की कथा बड़ी ही वैराग्य पैदा करनेवाली है, इसलिए तू उसे जरा सावधान मन से सुन । (राजा वगैरह की ओर इशारा करके) और आप लोग भी जरा अपने मन को इधर लगावें । ''इस भरतक्षेत्र में बसे हुए आर्यखण्ड में बन्ध्य नाम का एक प्रसिद्ध देश है । धर्म-साधन और सुख-साधन के कारणों से वह युक्त है । उसमें काशीकोशल नाम का एक बड़ा ही सुन्दर नगर था । उसके राजा का नाम भूपाल था । भूपाल की रानी का नाम वसुन्धरा था । उनके एक पुत्र था । उसका नाम था लोकपाल । वह बड़ा प्रतापी था ।

एक दिन राजा राजसभा में सिंहासन पर बैठे हुए थे । उनके पास उनका पुत्र लोकपाल तथा मन्त्री आदि भी बैठे हुए थे । इतने में राजमहल के खास दरवाजे पर राजा ने प्रजा के कुछ लोगों को कष्ट से रोते-गुहार मचाते हुए देखा । देखकर राजा ने अपने पास ही बैठे हुए अनन्तबुद्धि मन्त्री को पूछा । देखो तो ये लोग ऐसे क्यों चिल्ला रहे हैं?

अनन्तबुद्धि ने राजा से कहा । महाराज! यहाँ से दक्षिण की ओर विन्ध्यगिरि नाम का एक विशाल पर्वत है । उसमें व्याघ्र नाम का एक भीलों का राजा रहता है । उसकी स्त्री का नाम कुरंगी है । वह राजा बड़ा दुष्ट है । सदा प्रजा को कष्ट दिया करता है । उस कष्ट को दूर करने के लिए प्रजा आपसे प्रार्थना करने को आयी है । यह सुनकर राजा ने उसी समय सेनापति अनन्त को फौज लेकर उस पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी । सेनापति बड़ी भारी सेना लेकर विन्ध्यगिरि पर पहुँचा । भीलराज के साथ उसका घोर युद्ध हुआ । परन्तु पाप का उदय होने से जयलक्ष्मी अनन्त को न मिलकर भीलराज को मिली । भीलराज के इस प्रकार बलवान होने की जब भूपाल को खबर मिली तो इस बार वे स्वयं युद्ध हेतु जाने को तैयार हुए । पिता की यह तैयारी देखकर उनके पुत्र लोकपाल ने उन्हें रोककर स्वयं संग्राम के लिए भीलराज पर जा चढ़ा । दोनों का बड़ा भारी युद्ध हुआ । राजकुमार लोकपाल ने अपने तीक्ष्ण बाणों से भीलराज को मारकर विजयलक्ष्मी प्राप्त की ।

इधर भीलराज पाप के उदय से बड़े बुरे भावों से मरकर वत्सदेश के किसी छोटे गाँव में कुत्ता हुआ । वहाँ से वह एक ग्वालिन के साथ-साथ कौशाम्बी में आ गया । वहाँ वह एक जिनमन्दिर के मुहल्ले में रहने लगा । पाप के उदय से वहाँ से मरकर वह चम्पानगरी में प्रियसिंह और उसकी स्त्री सिंहनी के लोध नाम का पुत्र हुआ । अशुभ कर्मों के उदय से उसके माता-पिता बालपन में ही मर गये । वह अनाथ हो गया । कोई इसकी साल-सम्हाल करनेवाला न रहा । मातृ-सुख रहित होकर, भूख-प्यास का उसने बहुत कष्ट सहा । अन्त में अशुभ कर्म ने उसे भी माता-पिता का साथी बना दिया ।

इसी चम्पानगरी में एक महा धनी वृषभदास सेठ रहता था । उसकी स्त्री का नाम जिनमती था । उनके यहाँ एक ग्वाल था । वह बड़ा खूबसूरत था-भव्य था । बड़ा सीधा-साधा और बुद्धिमान था । वह ग्वाल उसी लोध का जीव था ।

एक दिन सूर्य के अस्त होने का समय था । सर्दी खूब पड़ रही थी । उस समय वह ग्वाल अपने घर पर आ रहा था । रास्ते में उसे एक चौराहा पड़ा । वहाँ उसने एक मुनिराज ध्यान करते देखे । वे अनेक ऋद्धियों से युक्त थे । उस समय एकत्वभावना का विचार कर रहे थे । आत्मध्यान से उत्पन्न होनेवाले परम सुख में वे लीन थे । महा धीर-वीर थे । एकाविहारी थे । ध्येय उनका था केवल मुक्ति-प्रिया की प्राप्ति

। वे राग-द्वेष से रहित थे । धर्मध्यान और शुक्लध्यान के द्वारा अपने हृदय को उन्होंने दोनों ध्यानमय बना लिया था । दोनों प्रकार के परिग्रह से वे रहित थे । द्रव्यकर्म और भावकर्म, इन दोनों कर्मों के नाश करने के लिए उनका पूर्ण प्रयत्न था । वे रत्नत्रय से भूषित थे । माया, मिथ्या और निदान इन तीन प्रकार के शल्य से रहित थे । वे तीनों बार सामायिक करते थे, त्रिकालयोग धारण करते थे और सबके उपकारी-हितैषी थे । क्रोध, मान, माया, लोभरूपी चारों शत्रुओं के नाश करनेवाले और चारों आराधनाओं की आराधना करनेवाले थे, पंचास्तिकाय के जाननेवाले और पाँचवीं सिद्धगति का ध्यान करनेवाले थे । पाँचों परमेष्ठियों की सेवा करनेवाले और पाँचों इन्द्रियों के विषयों के घातक थे । छहों द्रव्यों के स्वरूप को अच्छे जाननेवाले और छहों प्रकार के जीवों की रक्षा करनेवाले थे । मुनियों के सामायिकादि छह आवश्यक हैं, उनके करनेवाले और छहों अनायतन । कुदेव-कुगुरु-कुधर्म की सेवा और उनके माननेवालों की प्रशंसा, इनसे रहित थे । सातों तत्त्वों के स्वरूप के जाननेवाले और सातों भयों से रहित थे । सातवें गुणस्थान के धारी और सातों ऋद्धियों को प्राप्त करनेवाले थे । आठ कर्मरूपी शत्रुओं के घातक और सिद्धों के आठ गुणों के चाहनेवाले थे, आठवीं पृथ्वी-मोक्ष के मार्ग में स्थित थे । नौ पदार्थों के सार को जाननेवाले और ब्रह्मचर्य की नौ बाढ़-दोषों से रहित थे । उत्तम क्षमा आदि दस धर्मों के पालनेवाले और दस प्रकार के ध्यान में अपने मन को लगानेवाले थे । ग्यारह प्रतिमाओं का श्रावकों को उपदेश करनेवाले और बारह प्रकार के तप के करनेवाले महान साधु थे । तेरह प्रकार चारित्र के पालनेवाले और चौदह गुणस्थान, चौदह जीव समासों के जाननेवाले थे । पन्द्रह प्रकार के प्रमाद रहित और सोलहकारण भावनाओं के भानेवाले थे । हृदय के वे बड़े पवित्र थे । निस्पृह थे । वनवासी थे । भव्यजनों का हित करने के लिए वे सदा तत्पर रहते थे । उनके चरणकमलों की सब पूजा करते थे-उन्हें सब मानते थे । इन गुणों के सिवा उनमें और भी अनन्त गुण थे । शील के वे समुद्र थे, परम धीरजवान थे और सर्दी से जैसे वृक्ष जलकर विवर्ण हो जाता है, वैसे ही वे हो रहे थे । उन परम तपस्वी योगिराज को देखकर उस ग्वाल को बड़ी दया आयी । उसने अपने मन में कहा । अहा, ऐसी जोर की सर्दी और ओस गिर रही है और इनके पास कोई वस्त्र नहीं, तब ये सारी रात कैसे बितावेंगे? मेरे पास ज्यादा वस्त्र नहीं जो उन्हें ओढ़ाकर इनकी ठण्ड वगैरह से रक्षा कर दूँ । तब क्या करँ, कुछ सूझ नहीं पड़ता । इसके बाद ही उसे एक उपाय सूझ गया । वह मुनिभक्ति के वश होकर उसी समय अपने घर जाकर लकड़ियों का एक भारी गट्ठा बाँध लाया और साथ में थोड़ी सी आग भी लेता आया । मुनिराज के पास उसने आग जलायी, जिससे उन्हें उसकी गर्मी पहुँचती रहे । और आप उनके पाँवों के पास बैठकर थोड़ी-थोड़ी लकड़ी उस आग में जलाता गया । इसी तरह करते उसे सारी रात बीत गयी । ग्वाल ने मुनिराज की शीत-बाधा अवश्य दूर की, पर इससे वे खुश हुए हों, सो नहीं । कारण कि चाहे दु:ख हो या सुख, वीतरागी मुनियों को उसमें न द्वेष होता है और न प्रेम होता है । उनके लिए तो दोनों दशा एकसी होती हैं । दोनों में उनके समभाव होते हैं और ऐसे ही मुनि कर्मों का नाश कर सकते हैं । जो दु:खों से डरकर सुख की चाह करते हैं, वे कभी कर्मों का नाश नहीं कर सकते । सूर्योदय हुआ । योगिराज ने उस ग्वाल को भव्य समझकर हाथ के इशारे से उठाया और इस प्रकार धर्मोपदेश दिया । ''वत्स, मैं तुझे जो कुछ कहूँ, उसे सावधानी से सुनकर उस पर चलने का यत्न करना । उससे तुझे बहुत कुछ लाभ होगा । देख! तू जो कुछ काम करे, वह फिर छोटा हो या बड़ा, उसे शुरु करने के पहले तू 'णमो अरिहंताणं' इस मन्त्र को एक बार याद कर लिया करना । इस महामन्त्र में अरहन्त भगवान को नमस्कार किया है । इससे तू जो चाहेगा, वही तुझे प्राप्त होगा ।'' इस प्रकार उस ग्वाल को समझाकर और उस पर उसका विश्वास हो । प्रेम हो, इसके लिए आप स्वयं भी 'णमो अरिहंताणं' कहकर वे आकाश में गमन कर गये । उन्हें आकाश में जाते देखकर उसने समझा मुनिराज इसी मन्त्र के प्रभाव से आकाश में चले गये । मन्त्र के इस साक्षात् फल को देखकर वह बड़ा खुश हुआ । उसने तब मन में विचारा । अहा, जैसे ये मुनिराज इस महामन्त्र के उच्चारण मात्र से ही आकाश में चले गये, वैसे मैं भी तब इस मन्त्र की शक्ति से आकाश में उड़ सकूँगा । इस विचार ने उसके कोमल-सरल हृदय में मन्त्र जपने की पवित्र श्रद्धा को खूब ही बढ़ा दिया । इसके बाद वह इस मन्त्र का ध्यान करता हुआ अपने घर पहुँचा । अब से वह जो कुछ भी काम करता, उसके पहले इस मन्त्र का स्मरण कर लिया करता था । इस प्रकार मन्त्र का स्मरण करते देखकर एक दिन उसके मालिक वृषभदास ने उससे पूछा । क्यों रे, तू जो रोज-रोज 'णमो अरिहंताणं' इस मन्त्र का स्मरण किया करता है, इसका क्या कारण है? ग्वाले ने तब मुनिराज की शीत बाधा का दूर करना और उनके द्वारा अपने को मन्त्र-लाभ होना आदि, सब बातें आदि से इतिपर्यन्त सेठ को सुना दीं । सुनकर सेठ बड़े खुश हुए और उन्होंने उसकी प्रशंसा कर कहा । भाई! तू धन्य है । तेरा यह धर्म-प्रेम देखकर मुझे बड़ी खुशी हुई । इस मन्त्र-लाभ से तेरा जन्म सफल हो गया । इस मन्त्र के जपने से तू दोनों लोक में सुख लाभ करेगा । तुझे उत्तम गति प्राप्त होगी । इस प्रकार सेठ ने उसकी प्रशंसा कर बड़े प्रेम से

उसे भोजन कराया और अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण उपहार दिए । सच है धर्म का जब इस लोक में भी महान फल मिलता है । धर्मात्मा पुरुष लोगों द्वारा आदर-सत्कार, पूजा-प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, तब परलोक में वे धर्म के फल से धन-दौलत, राज्य-वैभव, स्वर्ग-मोक्ष आदि का सुख प्राप्त करें तो इसमें आश्चर्य क्या?

एक दिन वह ग्वाल भैंसें चराने को जंगल में गया था । किसी मनुष्य ने आकर उससे कहा । भाई! तेरी भैंसें तो गंगा के उस पार चली गयीं । यह सुनकर वह उन्हें लौटाने को दौडा और उस महामन्त्र का स्मरण कर झट से नदी में कूद पड़ा । जहाँ वह कूदा, वहाँ एक तीखा लकड़ा गड़ा हुआ था । सो उसके कोई ऐसा पाप का उदय आया कि उससे उसका पेट फट गया । मरते हुए उसने निदान किया । इस महामन्त्र के फल से मैं इन सेठ के यहीं पुत्रजन्म लूँ! वह मरकर फिर उस निदान के फल से तू अत्यन्त सुन्दर कामदेव हुआ ।

सुदर्शन! यह कामदेवपना, यह अलौकिक धीरता, यह दिव्य रूप-सुन्दरता, यह मान-मर्यादा, यह अनन्त यश, ये उत्तम उत्तम गुण और यह एक से एक बढ़कर सुख आदि जितनी बातें तुझे प्राप्त हैं, वे सब एक इसी महामन्त्र का फल है । सुदर्शन, इस अरहन्त भगवान के नाम-स्मरणरूप महामन्त्र के प्रभाव से अरहन्तों की श्रेष्ठ विभूति प्राप्त होती है, और शुद्ध सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का लाभ होकर जगत्पूज्य मुक्ति प्राप्त होती है । तीन लोक की लक्ष्मी इस मन्त्र का ध्यान करनेवाले धर्मात्मा पुरुषों की दासी हो जाती है । इन्द्र, अहमिन्द्र, चक्रवर्ती, बलभद्र आदि जितने महान पद हैं, वे सब इस मन्त्र का स्मरण करनेवाले बड़ी आसानी से लाभ करते हैं । धर्मात्मा पुरुषों को स्वर्ग या चक्रवर्ती आदि की सम्पत्ति बड़ी उत्कण्ठा के साथ बरती है । विघ्न, दुष्ट राजा, भूत-पिशाच, शाकिनीडाकिनी आदि के द्वारा दिये गये कष्ट-वगैरह, मन्त्र से कीले हुए सर्प की तरह सत्पुरुषों को कभी नहीं सता सकते । अनेक प्रकार की तकलीफें देनेवाले महापाप इस मन्त्र की आराधना करनेवाले के इस तरह नष्ट होते हैं, जैसे सूर्य से अन्धकार । सोना जैसे आग से शुद्धि लाभ करता है, उसी तरह जो लोग पापी हैं । कलंकित हैं, वे इस मंत्र के ध्यानरूपी अग्नि से परम शुद्धि लाभ करते हैं । इस मन्त्र के प्रभाव से शत्रु मित्र बन जाते हैं; दुष्ट, क्रूर, भूति पशाच आदि वश हो जाते हैं; भयंकर सर्प गले का हार हो जाता है, कितना ही तेज विष क्यों न हो, वह फौरन उतर जाता है और तलवार फूलों की माला हो जाती है । इसमें कोई आश्चर्य नहीं है । इस महामन्त्र की शक्ति से विपत्तियाँ सम्पत्ति के रूप में और दु:ख सुख के रूप में परिणत हो जाय और सिंह, व्याघ्र आदि भयंकर जीव वश हो जाँए । यह सहज है । इस मन्त्र का प्रभाव तो देखिए, जिन्होंने जीवन भर सातों व्यसनों का सेवन किया; हिंसा, झूठ, चोरी आदि पापों को किया, वे लोग भी इस मन्त्र के स्मरण से । केवल मृत्यु समय प्राप्त हुए मन्त्र का ध्यान कर स्वर्ग गये । सुदर्शन! यह मन्त्र कल्पना के अनुसार समस्त सुख देनेवाला है, इसलिए कल्पवृक्ष है । चिन्तित वस्तु का देनेवाला है, इसलिए अमोल चिन्तामणि है । सब भोगोपभोग की सामग्री का देनेवाला है, इसलिए अक्षय निधि है और कामना किये हुँ **अर्थ** का देनेवाला है, इसलिए कामधेनु है । जैसे परमाणु से कोई छोटा नहीं और आकाश से कोई बड़ा नहीं, उसी भाँति इस महामन्त्र के समान संसार में कोई मन्त्र नहीं, जो सब सिद्धियों का देनेवाला हो । क्षुद्र विद्या और स्तम्भनादिक जितने मन्त्र यन्त्र हैं, सब इस अरहन्त भगवान के ध्यानरूप मन्त्र के प्रभाव से बे-काम के हो जाते हैं । इस मन्त्र के प्रभाव से वश हुई मुक्तिश्री उस धर्मात्मा को, जिसने इस मन्त्र की आराधना की है, कन्या की तरह स्वयं वरती है । अपना स्वामी बनाती है । इस मन्त्र का ध्यान करनेवाला अर्थात् मन्त्र के विषयभूत पंच परमेष्ठी जिस आत्मा का ध्यान करते हैं, वैसे ही अपने निज आत्मा का ध्यान करनेवाला अवश्य मोक्ष जाता है । तब स्वर्ग की देवकुमारियाँ उस पुरुष को चाहें तो इसमें आश्चर्य क्या । तात्पर्य यह कि इस मन्त्र का मुख्य फल मोक्ष है और स्वर्गीय सुखों का प्राप्त होना गौण फल है । मेरी समझ के अनुसार इस परममन्त्र का जो प्रभाव है, उसे पूर्णपने यदि कोई कह सकते हैं, तो वे केवली भगवान; और कोई कहने समर्थ नहीं ।

सुदर्शन! इस मन्त्र के 'अरहन्त' पद में एक और विशेषता है । वह यह कि इसमें पाँचों ही परमेष्ठी गर्भित हैं । सकल परमात्मा अरहन्त भगवान तो सिद्ध हैं, वे पंचाचार का उपदेश देते हैं, इसलिए आचार्य हैं, दिव्यध्वनि द्वारा सब पदार्थों का स्वरूप कहते हैं, इसलिए उपाध्याय हैं और मुक्तिरूपी स्त्री की साधना करने से परम साधु हैं । इस प्रकार पाँचों परमेष्ठी के सब गुणों से युक्त यह मन्त्र सब मन्त्रों का महान मन्त्र है । इसकी उपमा को कोई मन्त्र नहीं पा सकता । ऐसे महामन्त्ररूप अरहन्त पद का ध्यान करने से यह सब सिद्धियों को देता है । क्योंकि इसका ध्यान करने से पाँचों ही परमेष्ठी का ध्यान हो जाता है । सुदर्शन! जो मोक्ष के सुख की इच्छा करते हैं, उन्हें इस अरहन्त भगवान के उच्च गुणस्वरूप और सत्य के प्राप्त करानेवाले नमस्कार-गर्भित पवित्र मन्त्र का मनवचन- काय के योगपूर्वक सब अवस्थाओं में । सुख में, दु:ख में, भय में, रास्ते में, समुद्र में, घोर युद्ध में, पर्वत में, आग लगने पर, या आग के और कोई उपद्रव में, सोते

समय, सर्प-व्याघ्र आदि हिंसक जीवों द्वारा किये गये कष्ट में, चोरों के उपद्रव में, असाध्य रोग में, मृत्यु के समय, या और किसी प्रकार के कष्ट या विघ्नों के उपस्थित होने पर ध्यान करना चाहिए । यह महान मन्त्र है, इसका प्रभाव सबसे बढ़ा चढ़ा है । अरहन्त भगवान के सब उच्च गुण इसमें समाये हुए हैं । यह सत्य का प्राप्त करानेवाला है । इसलिए पापों का नाश और मोक्ष का सुख प्राप्त करने के लिए इस मन्त्र को हृदय से और वचन से कभी न भुलाना चाहिए । प्रतिदिन इसका ध्यान-आराधन करते रहना उचित है । कर्तव्य है ।

इस मन्त्र के वाच्यभूत अरहन्त को जो जीव द्रव्य-गुण और पर्यायरूप से जानता है, वह अपनी आत्मा को जानता है और अपनी आत्मा को जाननेवाले उस भव्यजीव के दर्शनमोह नष्ट हो जाता है; निकट काल में ही स्वरूपसाधना की पूर्णता कर वह मुक्तिश्री का वरण करता है । जब तक मुक्तिश्री का वरण न हो, तब तक उस ज्ञानी धर्मात्मा को सातिशय पुण्य के प्रभाव से लौकिक समृद्धियाँ तो सहज ही प्राप्त हो जाती हैं, किन्तु उस ज्ञानी की दृष्टि में उस पुण्यभाव और पुण्यकर्म का तथा उनसे प्राप्त भोगोपभोग का कोई मूल्य नहीं होता, वह तो उन सबसे पार निज शुद्धात्मतत्त्व की भावना में ही वृद्धि करते हुए भवसागर से पार हो जाता है ।

इस मन्त्र का ऐसा उत्कृष्ट माहात्म्य सुनकर सुदर्शन, राजा और प्रजाजन बड़े खुश हुए और सभी ने यथाशक्ति इस मन्त्र के स्मरण की प्रतिज्ञा अंगीकार की । मुनिराजश्री ने आगे कहा । सुदर्शन! पूर्व भव में तुम्हारी जो कुरंगी नाम की स्त्री थी, वह बुरे परिणामों से मरकर बनारस में भैंस हुई । उस पर्याय में उसने बड़ी-बड़ी तकलीफें उठायीं । तिर्यंचगति के दुस्सह दु:खों को चिर काल तक भोगा । फिर जब उसका पापकर्म कुछ हल्का हुआ तो वह वहाँ से मरकर इसी चम्पानगरी में साँवल नाम के धोबी की स्त्री यशोमती के वत्सिनी नाम की पुत्री हुई ।

काललब्धि से एक दिन उसे आर्यिकाओं का संघ मिल गया । उसने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से उन सब आर्यिकाओं की वन्दना की । संघ की प्रधान आर्यिका को उसकी दशा पर बड़ी दया आयी । उसने इससे कहा । बेटा! तुझे धर्म के ग्रहण करने का सम्बन्ध अब तक न मिला । देख, यह उसी पाप का फल है जो तू ऐसे दरद्रि, मदिरा-माँस खानेवाले और पाप के कारण नीच कुल में पैदा हुई । इसलिए अब तुझे उचित है कि तू इस पवित्र धर्म को ग्रहण करे, जिससे तुझे इस भव में सुख-सम्पत्ति और परभव में अच्छी गति, अच्छा कुल और रूप-सौभाग्य प्राप्त हो । उस धर्म का संक्षेप स्वरूप है । पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत, इन बारह व्रतों का पालना, रात में भोजन का त्याग करना, उपवास करना, दान देना, पंच नमस्कार मन्त्र की आराधना करना और जैनधर्म पर विश्वास करना । इन पवित्र आचार-विचारों से तुझे धर्म की प्राप्ति हो सकेगी ।

आर्यिका के उपदेश पर उसकी बड़ी श्रद्धा हो गयी । उसने उसके उपदेशानुसार माँस-मदिरा आदि का खाना छोड़ दिया, त्रस जीवों की हिंसा करनी छोड़ दी और अपने अनुकूल व्रतों को ग्रहण कर वह अब उन आर्यिकाओं के ही साथ रहने लगी । सुदर्शन! उनके साथ रहकर उसने जो पवित्रता प्राप्त की, उससे और व्रतपालन से उसे जो पुण्यबन्ध हुआ उसके प्रभाव से वह शुभ परिणामों से मरकर यह तेरी रूप-सौभाग्यवती और बड़ी धर्मशील स्त्री मनोरमा हुई है और यही कारण है कि इसका तुझ पर और तेरा इस पर अत्यधिक प्रेम है । सुदर्शन! ये प्रेम, मित्रता, शत्रुता आदि जितनी बातें हैं, वे सब पूर्व जन्म के संस्कार से हुआ करती हैं, इसलिए बुद्धिमानों को इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं ।

इस प्रकार विमलवाहन मुनिराज के मएुह से सुदर्शन अपने पुण्य-पाप के फलरूप पूर्व जन्मों का वर्णन सुनकर संसार-दु:ख के कारण पापाचरण से भयभीत हो गया और इसीलिए वह जिनदीक्षा लेने को तैयार हो गया ।

एक ग्वाल ने । क्षुद्र कुल में जन्में मनुष्य ने 'णमो अरिहंताणं' इस मन्त्र की आराधना की । उसके प्रभाव से वह बड़ा भारी सेठ हुआ, गुणी हुआ, महान धीरजवान् हुआ, चरमांगधारी । उसी भव से मोक्ष जानेवाला हुआ; और अन्त में मोक्ष प्राप्ति के कारण वैराग्य को प्राप्त होकर मुनि हो गया । तब भव्यजनों, तुम भी इस महान पंच नमस्कार-मन्त्र का मनोयोगपूर्वक ध्यान करो, जिससे तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति हो सके । उन अरहन्त भगवान को, जो संसार के बुद्धिमानों द्वारा पूज्य और इन्द्रिय तथा मोक्ष सुख के देनेवाले हैं, उन सिद्ध भगवान को, जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आदि आठ गुणों के धारक और शरीररहित हैं, उन आचार्य को, जो सदा पंचाचार के पालने में तत्पर रहते हैं, उन उपाध्याय को, जो पठन-पाठन में लगे रहते हैं और उन साधु को, जो निस्पृही और परम वीतरागी हैं, मैं नमस्कार करता हूँ । वे मुझे अपने-अपने गुण प्रदान करें ।

सुदर्शन की तपस्या

सुदर्शन की तपस्या

कथा :

जिन्हें इन्द्र,धरणेन्द्र और चक्रवर्ती आदि संसार के महापुरुष पूजते हैं, और जो संसार-समुद्र में बहते हुए, अवलम्बन रहित निराधार प्राणियों को सहारा देकर पार करते हैं । सब सुखों को देते हैं, उन पाँचों परमेष्ठियों को मैं श्रद्धापूर्वक नमस्कार करता हूँ ।

विमलवाहन मुनिराज के द्वारा अपने और मनोरमा के भवों का वर्णन सुनकर सुदर्शन संसार-भ्रमण के कारण पर यों विचार करने लगा । संसार बड़ा ही दुर्गम है, महा भयानक है । इसमें सुख का नाम भी नहीं; किन्तु यह उल्टा अनन्त दु:खों से परिपूर्ण है । तब सत्पुरुष इससे कैसे प्रेम कर सकते हैं । पाप-कर्मरूपी साँकल से बंधे और विषयरूपी शत्रुओं से ठगे गये प्राणी धर्म-कर्म रहित हो अनादि काल से इसमें घूमते-फिरते हैं, पर अबतक वे इसके पार न हुए । इसमें भ्रमण करानेवाले पापकर्म जीवों के लिए बड़े ही अनर्थ के करनेवाले हैं । इन संतति-क्रम से चले आये कर्मों का कारण मिथ्यात्व है । वह मोक्षमार्ग का नष्ट करनेवाला और महान दु:खों का देनेवाला है । उसे सहसा छोड़ देना बड़ा ही कठिन है । उसके पाँच भेद हैं । एकान्त, विनय, विपरीत, सांशयिक और अज्ञान । ये पाँचों ही मिथत्व महानिंद्य हैं, हलाहल विष हैं । इनके सम्बन्ध से संसार बढ़ता है, पाप बढ़ता है और अनन्त दु:ख उठाने पड़ते हैं । इसलिए जो धर्मात्मा हैं, धर्म-लाभ चाहते हैं, उन्हें सम्यक्त्व ग्रहण कर इस मिथ्यात्व शत्रु का नाश कर देना चाहिए । नहीं तो इस मिथ्यात्व से उनके धर्माचार-दर्शन, ज्ञान और चारित्र आदि गुण, जो संसार के उत्तमोत्तम सुख के कारण हैं, जहर से नष्ट होनेवाले दूध की भाँति बहुत शीघ्र नष्ट हो जाँएगे । कारण यह मिथ्यात्व-शत्रु बड़ा ही दुर्जय है, पाप का समुद्र है, संसार को दु:ख देनेवाला है । इसे तो नष्ट करने में ही आत्म-हित है ।

इसके सिवा पाँच इन्द्रिय और मन इन छहों की स्वच्छन्द प्रवृत्ति और पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति और त्रस, इन छहों प्रकार के जीवों की प्रमाद से विराधना-हिंसा, ये बारह अव्रत कहे जाते हैं । ये पाप के खान हैं और संसार के बढ़ानेवाले हैं । इसलिए जो अपना आत्महित चाहते हैं, उन्हें व्रत, संयम आदि के द्वारा इन अव्रतों को छोड़ने का यत्न करना चाहिए ।

संसार के बढ़ानेवाले पाँचों इन्द्रियों के विषय भी हैं । सो जो सच्चे सुख की इच्छा करते हैं, वे इन विषयरूपी चोरों को वैराग्य की रस्सी से खूब मजबूत बाँधकर तप-क्लेशरूपी कैदखाने में डाल देते हैं । फिर वे इनको कुछ हानि नहीं पहुँचा सकते । और जो बेचारे इन महान धूर्तों के फन्दे में फंस जाते हैं, उनकी सब विवेकबुद्धि नष्ट हो जाती है । फिर वे स्त्रियों के साथ विषय-भोगों में, जो अनन्त दु:खों के देनेवाले हैं, सुख देखने लगते हैं । पर असल में ये विषयभोग बड़े दुष्ट हैं, धूर्त हैं और संसार को धोखे में डालनेवाले हैं । इसलिए मुमुक्षुओं को चाहिए कि वे व्रत-धर्मरूपी तलवार से शत्रुओं की भाँति इन्हें नष्ट करने का यत्न करें । जो जड़ हैं । जिन्हें हिताहित का ज्ञान नहीं, वे ही इन पाप के समुद्र, अशुभ, और अन्त में अत्यन्त तीव्र दु:ख के देनेवाले और दु:ख के मूल कारण विषयभोगों को भोगते हैं । जिन विषयों को पशु म्लेच्छ आदि भोगते हैं, उन्हें बुद्धिमान लोग कैसे अच्छे समझें । उनमें सिवा अपने और स्त्रियों के शरीर नष्ट होने, शक्ति नष्ट होने और दु:ख होने के, कुछ लाभ नहीं । इन विषयों का सेवन तो किया जाता है काम-शान्ति के लिए, पर ज्यों-ज्यों वे भोगे जाते हैं, त्यों-त्यों कामाग्नि शान्त न होकर उल्टी अधिक-अधिक बढ़ती जाती है । तब बुद्धिमानों को यह समझकर, कि ये विषय सर्व अनर्थों के करनेवाले और बड़े दुष्ट हैं, इनके छोड़ने का यत्न करना चाहिए । जैसे कि रोग के मिटाने का यत्न किया जाता है । जिस संसार में सुख समझकर विषयी मूर्ख लोग शरीर द्वारा विषयों का सेवन करते हैं, वह संसार महानिंद्य है, तमाम अपवित्रताओं का स्थान है । और यह शरीर भी महा बुरा है, एक गिरी-पड़ी झोपड़ी के समान है । इसमें भूख-प्यासरूपी आग जल रही है । काम, क्रोध, लोभ, मान, मायारूपी भयंकर सर्पों ने अपने रहने का इसे बिल बना लिया है और एक ओर धर्म-रत्न के चुरानेवाले पंचेन्द्रियरूपी चोरों ने इसमें अपना डेरा डाल रखा है । तब ऐसी जगह कौन बुद्धिमान एक क्षणभर के लिए भी रहना पसन्द करेगा! इस शरीर को पाना तो उन्हीं लोगों का सफल है जिन्होंने स्वर्ग, मोक्ष और धर्म की प्राप्ति के लिए कठिन से कठिन तप कर शरीर को कष्ट दिया, और लोगों का नहीं । यह जानकर इस असार शरीर द्वारा स्वर्ग, मोक्ष और आत्म-कल्याण का परम कारण निर्दोष तप करना चाहिए । सब में मन बड़ा ही चंचल है । शरीर और इन्द्रियरूपी नौकरों का राजा है । इसी की प्रेरणा से इन्द्रियाँ विषयों की ओर जाती हैं । इसलिए सबसे पहले इस दुर्जय मन को वैराग्यरूपी खड्ग से मार डालना चाहिए । क्योंकि जिस बुद्धिमान ने अपने मन को रोक लिया, उसकी इन्द्रियाँ फिर कुछ कुकर्म नहीं कर पातीं और उनके लिए कोई आश्रय न रहने से वे स्वयं नष्ट हो जाती हैं । इसके अतिरिक्त धर्मात्मा पुरुषों को मोक्ष प्राप्ति के लिए व्रत, समिति आदि ग्रहण कर बड़ी सावधानी के साथ छह काय के जीवों की रक्षा करनी चाहिए । ये सब यत्न कर्मों के नाश करने के लिए बतलाये गये हैं । जिन

भगवान ने जिस महान धर्म का उपदेश किया है, उसका मूल है । 'अहिंसा' । यह धर्म संसार का भ्रमण मिटाकर जीव को मोक्ष का सुख प्राप्त कराता है । इस धर्म में संयम ग्रहण द्वारा बारह अव्रत का त्याग करना कहा गया है । क्योंकि ये अव्रत पाप बन्ध के कारण हैं । चार विकथा और पन्द्रह प्रमाद, ये भी पाप-बन्ध के कारण हैं । आत्मकल्याण की कामना करनेवालों को ध्यान, अध्ययन आदि द्वारा इनके नष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए । क्योंकि प्रमादी पुरुषों के कर्मों का आस्रव सदा ही आता रहता है । उनके दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि नष्ट होकर संसार बढ़ने लग जाता है । मोक्ष का सुख चाहनेवालों को कषायों पर विजय करना चाहिए । क्योंकि ये कर्मों की स्थिति को बढ़ाती हैं और इन कषायों के आवेश में जब क्रोध आता है, तब उस क्रोधी मनुष्य का जप-तप, ध्यान-ज्ञान, आचार-विचार, क्रिया-चारित्र आदि सभी नष्ट होकर दु:ख, विपत्ति, संसार-स्थिति आदि खूब बढ़ जाते हैं । यह जानकर बुद्धिमानों को उत्तम-क्षमा आदि इस धर्मरूपी धनुष-बाण द्वारा इन दुष्ट कषायरूपी शत्रुओं को नष्ट कर देना चाहिए । तभी वे सुख प्राप्त करने के अधिकारी बन सकेंगे ।
मन-वचन-काय के कर्म-व्यापार को योग कहते हैं । इसके पन्द्रह भेद हैं । ये योग शुभ-पुण्यबन्ध और अशुभ-पापबन्ध के कारण हैं । इन तीनों ही प्रकार के योगों को रोकना चाहिए । सत्यमनोयोग और अनुभयमनोयोग, सत्यवचनयोग और अनुभय वचनयोग, ये चार योग शुभबन्ध के कारण हैं और असत्यमनोयोग तथा उभयमनोयोग, और असत्यवचनयोग तथा उभयवचनयोग, ये चार योग पापबन्ध के कारण हैं । अशुभ मनोयोगवाले के सदा कर्मों का आस्रव आता रहता है । इसलिए बुद्धिमानों को शुभ ध्यान द्वारा इस अशुभयोग के छोड़ने का यत्न करना चाहिए । और अशुभवचनयोग को, जो अत्यन्त निंद्य और पाप का कारण है, सत्यव्रत और मौनव्रत द्वारा रोकना चाहिए । यद्यपि उपदेश शुभ और अशुभ इन दोनों ही योगों के छोड़ने का है; परन्तु धर्मोपदेश, ध्यान-सिद्धि आदि के लिए कभी-कभी शुभयोग भी धारण किया जाता है । वह पुण्य के बढ़ाने का कारण है । रहा सात प्रकार का काययोग, सो वह पाप और अनर्थों का कारण-अशुभ है, इसलिए साधुओं को कायोत्सर्ग, ध्यान-अध्ययनादि द्वारा उसे नष्ट करना चाहिए । यहाँ जिन-जिन संसार के बढ़ानेवाले कारणों का उल्लेख किया गया, वे सब अनन्त दु:खों के कारण हैं । उन्हें भयंकर काले सर्प की तरह दूर ही से छोड़ देना चाहिए । तब ही कर्मों का आना रुक सकेगा और मोक्ष सुख का लाभ प्राप्त किया जा सकेगा । इन मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय, योग आदि के रुकते ही कर्मों का आना रुक जाँगा और कर्मों के रोकने के लिए वैराग्यरूपी शस्त्र से राग, द्वेष, मोह आदि शत्रुओं को नष्ट कर मुनिपद स्वीकार करना चाहिए । । इस प्रकार के विचारों से सुदर्शन का वैराग्य बहुत ही बढ़ गया । वह फिर स्त्री, पुत्र, भाई-बन्धु, धन-दौलत, सुख-वैभव, तथा दस प्रकार बाह्य परिग्रह और मिथ्यात्व, राग, द्वेष आदि चौदह अन्तरंग परिग्रह-आत्म-शत्रु, इन सबको छोड़कर नि:शल्य- चिन्तारहित हो गया ।
इसके बाद वह श्रीविमलवाहन मुनिराज के पास आया और उन्हें अपना दीक्षा-गुरु बना, उसने नमस्कार किया । फिर उनके कहे अनुसार शुद्ध मन से यह संकल्प कर, कि । 'सारे संसार के जीवों पर मेरा समान भाव है' और अठ्ठाईस मूलगुणों की, जो केवलज्ञान आदि गुणों के प्राप्त करानेवाले हैं, भावना भाते हुए उस धर्मात्मा ने मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक सब सुखों और मुक्ति की माता दिव्य जिनदीक्षा ग्रहण कर ली ।
सुदर्शन का यह साहस देखकर राजा को बड़ा वैराग्य हुआ । वह भी तब संसार-शरीर-भोगों से विरक्त हो गया । उसने अपने पुत्र को राज्य का सब भार सौंपकर और सुदर्शन के पुत्र सुकान्त को राजसेठ बनाकर बाह्याभ्यन्तर परिग्रह को छोड़कर सुदर्शन के साथ ही विमलवाहन मुनिराज से जिनदीक्षा ले ली, जो संसार का भ्रमण मिटाकर कार्मों का नाश करती है । मोक्ष का सुख देती है ।
अपने स्वामी को योगी होते देख सब राज-रानियाँ भी एक साड़ी के सिवा सब परिग्रह को छोड़कर दीक्षा ले आर्यिका हो गयीं । अब वे जप-तप, ध्यानाध्ययन करती हुईं आर्यिकाओं के साथ रहने लगीं । अपने स्वीकार किये संयम को पालती हुईं और धर्म साधन करती हुइरं, उन्होंने वहीं पारणा किया । यहाँ से वे सब मुनि विहार कर अनेक देशों और शहरों में धर्मोपदेशार्थ घूमे-फिरे । अपने व्रतों को उन्होंने प्रमाद रहित होकर पालन किया । सुदर्शन बड़ा बुद्धिमान और जितेन्द्रिय था, सो उसने अभ्यासरूपी खेवटिये द्वारा खेये गये और अप्रमादरूप वायु वेग से बहनेवाले श्रीगुरु के मुखरूपी जहाज पर चढ़कर थोड़े ही दिनों में द्वादशांगरूपी महान समुद्र को, जो कि अनमोल रत्नों से भरा हुआ है, पार कर लिया ।
मुनिराज सुदर्शन ने तपस्या द्वारा अपनी आत्मशक्ति को खूब बढ़ा लिया । वे बड़े ही धीर और तेजस्वी हो गये । दु:सह परीषहों को सहने लगे । नाना देशों और नाना गाँवों में घूमने-फिरने से अनेक भाषाँए उन्हें आ गयीं । ऐसा कोई गुण न बचा जो उनमें न हो । वे

वज्रवृषभनाराचसंहनन का धारक थे । उन्हें इस प्रकार सहनशील और तेजस्वी देखकर उसके गुरु ने अकेले रहने की आज्ञा दे दी । गुरु महाराज की आज्ञा पाकर वे अपने मूल और उत्तर गुणों का मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक पालन करते हुए अकेले ही नाना देशों में पर्यटन करने लगे । उन्होंने अब कर्मों के नाश करने की खूब तैयारी की । अपनी शक्ति को प्रगट कर वह बारह प्रकार तप करने लगे । (१) अनशन-तप के लिए वे पन्द्रह-पन्द्रह दिन, एक-एक, दो-दो, तथा चार-चार, छह-छह महीना के उपवास करते थे । इसलिए कि उनसे उत्पन्न हुई तपरूपी अग्नि कर्मरूपी वन को भस्म कर मोक्ष का सुख दे । (२) अवमौदर्य-तप के लिए वे पारणा के दिन भी थोड़ा सा आहार ग्रहण करते और फिर दिनों दिन आधा-आधा आहार घटाते जाते थे । जिससे कि प्रमाद-अलास न बढ़ पाये । (3) वृत्तपरिसंख्यान-तप के लिए वे बड़ी-बड़ी कड़ी प्रतिज्ञाँए करते । कभी वह प्रतिज्ञा करते कि आज मुझे चौराहे पर आहार मिलेगा तो करँगा, अथवा एक ही घर तक आहार के लिए जाऊँगा । कभी इससे और कोई विलक्षण ही प्रतिज्ञा करते । उसी दशा में यदि आहार मिल गया तो कर लेते, नहीं तो वापिस तपोवन में लौट आते । (4) रसपरित्याग-तप के लिए वे कभी केवल एक ही अन्न ग्रहण करते, कभी कोई रस छोड़ देते और कभी कोई । जिससे विकार न बढ़े-इन्द्रियों की विषय-लालसा नष्ट हो, ऐसा आहार वे सदा करते थे । (५) विविक्तशय्यासन-तप के लिए वे कभी सूने घरों में, कभी गुफाओं में, कभी वनों में, कभी मसानों में और कभी पर्वतों में रहते, जहाँ कोई न होता । जो निर्जन-एकान्त स्थान होते । और कभी ऐसे भयंकर स्थानों में, जहाँ सिंह, व्याघ्र, रीछ, चीते, गेंडे आदि हिंसक जीव रहते, सिंह की तरह निर्भय-निडर होकर निवास करते । उनका लक्ष्य था 'ध्यानसिद्धि' और उसी के लिए वे सब कुछ करते और सहते थे । (६) कायक्लेश तप के लिए वे वर्षा समय वृक्षों के नीचे ध्यान करते । ऊपर मूसलधार पानी बरस रहा है, बड़ी प्रचण्ड हवा बह रही है और वृक्ष विषैले साँप, बिच्छु आदि जीवों से युक्त हो रहे हैं । ऐसी भयंकर जगह में जहाँ अच्छे से अच्छा हिम्मतीबहादुर भी एक क्षण नहीं रह सकता, वहाँ वे महीनों एकासन से व्यतीत कर देते । शीत के दिनों में जब कड़कड़ाहट ठण्ड पड़ती, वृक्ष झुलस जाते, शरीर थरथर काँपने लगता, उस समय वे शरीर से सब माया-ममता छोड़कर नंगे-शरीर काठ की भाँति खड़े होकर ध्यान करते । वह भी खुले मैदान में या नदी अथवा तालाब आदि के किनारों पर । गर्मी के दिनों में जब खूब गर्मी पड़ती, पर्वतों के ऊँचे शिखर उस गर्मी के मारे तपकर आगवत् लाल हो जाते, सारे शरीर से पसीना निकलने लगता, उस पर हवा से उड़ी धूल आ-आकर चारों ओर से गिरती, प्यास के मारे गला सूखने लगता, और हृदय छटपटाने लगता । जहाँ पर एक मिनिट के लिए ठहरने की किसी की हिम्मत न पड़ती, वहाँ सुदर्शन-से धीरवीर महात्मा महीनों बिता देते और कष्ट की कुछ परवाह न करते । बड़ी शान्ति के साथ उन्हें सहते । यह कायक्लेश-तप बड़ा ही दु:सह है, पर सुदर्शन मुनि का ध्येय था अनन्त सुख-मोक्ष की प्राप्ति और पापों का नाश । इसलिए वह इन सबको बड़ी धीरता के साथ सह लेते थे । यह हुआ छह प्रकार का बाह्य तप और इसी तरह छह ही प्रकार का अभ्यन्तर तप है । अभ्यन्तर तप जिस लिए किया जाता है, वह कारण योगियों को प्रत्यक्ष है । यह तप बड़ा दु:सह है, जिनका हृदय डरपोक है, वे इसे धारण नहीं कर सकते । यह कर्मरूपी वन को जलाने के लिए दावानल के समान है । योगी लोग कर्म शत्रुओं की शान्ति के लिए इसे धारण करना अपना कर्तव्य समझते हैं । साधु लोग यद्यपि बड़ी सावधानी रखते हैं कि उनसे कोई प्रकार प्रमाद न बन जाय तथापि यदि दैवी-घटना से उनके व्रतों में कोई दोष लग जाय तो उनकी शुद्धि के लिए वे प्रायश्चित लेते हैं । प्रायश्चित से उनके सब व्रत-आचरण निर्दोष होकर परम शुद्ध हो जाते हैं । यह पहला प्रायश्चित-तप है । दूसरा विनय-तप है । उसके लिए वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप और इनके धारण करनेवाले पवित्र तपस्वियों का मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक विनय करता । इस विनय-गुण के प्रभाव से उन्हें सब विद्याँए सिद्ध हो गयीं थीं, जो संसार के पदार्थों का ज्ञान कराने के लिए दीपक की भाँति हैं । तीसरा वैयावृत्य-तप है । इसके लिए वे अपने से जो तप, ध्यान, योग और गुणों में अधिक थे, उनकी बड़े हर्ष के साथ जितनी अपने में शक्ति होती, उसके अनुसार वैयावृत्य करते । जिससे कि उन्हें भी उनके समान शक्तियाँ प्राप्त हों । इस तप के प्रभाव से उन्हें बड़ी शक्ति प्राप्त हो गयी थी । उससे वे कठिन से कठिन तप करने में कभी विमुख नहीं होते । उनका रत्नत्रय जो सब सिद्धियों का देनेवाला, बड़ा निर्दोष-निर्मल हो गया था । चौथा स्वाध्याय-तप है । इसके लिए वे अप्रमादी, जितेन्द्री सुदर्शन सदा स्वाध्याय में लीन रहते थे । स्वाध्याय के पाँच भेद हैं, सो वह कभी स्वयं शास्त्रों का अध्ययन करते, कभी अपने से अधिक ज्ञानियों से अपनी शंकाओं का समाधान करते, कभी तत्त्वज्ञान का बारबार मनन या चिन्तन करते । उस पर विचार करते, कभी पाठ को शुद्धता के साथ घोखते और कभी मिथ्या मार्ग को दूर करने और सत्यार्थ मार्ग को प्रगट करने के लिए धर्म का पवित्र उपदेश करते । यह पाँचों प्रकार का स्वाध्याय अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करनेवाला है । इसे निरन्तर करते रहने से साधुओं का चित्त स्वप्न में भी अपने ध्यान से नहीं डिगता और

वैराग्य में बड़ा ही स्थिर हो जाता है । पाँचवाँ व्युत्सर्ग-कायोत्सर्ग-तप है । इसके लिए वे काठ की भाँति निश्चल होकर एकान्त स्थान में नाना प्रकार कायोत्सर्ग करते । पन्द्रह-पन्द्रह दिन, महीना-महीना ध्यान में खड़े ही रहते । इस तप के प्रभाव से वे सुदर्शन महामुनि संसार-विषय-भोगसम्बन्धी सुखों के प्रति अत्यन्त निर्मोही हो गये थे । यह तप कर्मों का जड़मूल से नाश करनेवाला है । छठा ध्यान नामक तप है । ध्यान के चार भेद हैं । आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान । इसमें आर्तध्यान के भी चार भेद हैं । पहला अनिष्ट-संयोग नाम आर्तध्यान, **अर्थ**ात् जिस वस्तु को मन नहीं चाहता, उसके नष्ट होने का बार-बार चिन्तन करते रहना । वह कब नष्ट होगी । दूसरा, इष्ट-वियोग नामक आर्तध्यान, अर्थात् जिसे मन चाहता है, उसकी प्राप्ति के लिये चिन्तन करते रहना । तीसरा, रोग से होनेवाला (पीड़ाचिंतन) आर्तध्यान है । रोगजनित कष्ट का चिन्तन करना, अधीर होना, रोना-धोना आदि । चौथा, निदान नामक आर्तध्यान है । निदान अर्थात् आगामी विषय-भोगादिक की इच्छा करना, उसका विचार करना । यह आर्तध्यान बड़ा ही बुरा और पुण्य-कर्म का नाश करनेवाला है । सुदर्शन ने इसे शुभध्यान द्वारा जड़मूल से नष्ट कर दिया था । इसलिए उनके निर्मल हृदय को यह आर्तध्यान स्वप्न में भी न छू पाया । इसी प्रकार रौद्रध्यान के भी चार भेद हैं । पहला, हिंसानंदी रौद्रध्यान **अर्थ**ात् हिंसा में आनन्द मानना । दूसरा, मृषानन्द रौद्रध्यान अर्थात् झूठ बोलने में आनन्द मानना । तीसरा, स्तेयानन्द-आर्तध्यान, अर्थात् चोरी करने में आनन्द मानना । चौथा, परिग्रहानन्द-आर्तध्यान, अर्थात् भोगोपभोग की वस्तुओं की रक्षा का चिन्तन करना और उसमें आनन्द मानना । इस ध्यान में सिवा कष्ट के सुख का नाम नहीं । यह बड़ा बुरा ध्यान है । परन्तु सुदर्शन ने अपने निर्मल आत्मा पर इसका तनिक भी असर न होने दिया । सो ठीक ही है । सामान्य योगियों के महाव्रत में भी जब यह कुछ हानि नहीं कर सकता, तब सुदर्शन-से महायोगी के अत्यन्त शुद्ध आत्मा पर यह कैसे अपना प्रभाव डाल सकता है । ये आर्तध्यान और रौद्रध्यान बुरे हैं, इसलिए छोड़ने योग्य हैं और धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान आत्मकल्याण के परम साधन हैं, इसलिए ग्रहण करने योग्य हैं । उक्त दोनों ध्यानों की भाँति इनक भी चार-चार भेद हैं । धर्मध्यान के चार भेदों में पहला आज्ञाविचय-धर्मध्यान, अर्थात् सर्वज्ञ भगवान ने जो सत्यार्थ प्रतिपादन किया और कम बुद्धि होने के कारण यदि वह समझ में न आवे तो उस पर वैसा ही विश्वास कर बार-बार विचार करना । दूसरा, अपायविचय-धर्मध्यान, अर्थात् करुणाद्र अन्त:करण से, हाँ! मिथ्यामार्ग पर चलते हुए ये संसारी जीव कब सुमार्ग पर चलने लगेंगे, इस प्रकार मिथ्यामार्ग के अपायनाश का बार-बार चिन्तन करना । तीसरा, विपाकविचय-धर्मध्यान, अर्थात् ज्ञानावरणादि कर्मों के फल पर बार-बार विचार करना । चौथा, संस्थानविचय-धर्मध्यान, अर्थात् लोक के संस्थान का । आकारप ्रकार का चिन्तन करना । यह धर्मध्यान उत्कृष्ट ध्यान है, सुख का देनेवाला है, धर्म का समुद्र है और सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त ले जानेवाला है । महायोगी सुदर्शन अपने योगों को रोककर इस ध्यान को करते थे ।

इसके बाद उन्होंने अपने मन को निर्विकल्प और परम वैरागी बनाकर अप्रमत्तगुणस्थान में शुक्लध्यान के पहले पाये पृथक्त्ववित र्कवीचार का ध्यान करना आरम्भ किया । यह ध्यान आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने के लिए रत्नमयी दीपक के समान है और कर्मरूपी वन के जलाने को आग के समान है । शुक्लध्यान के शेष रहे तीन पायों को आगे पूर्ण कर सुदर्शन मोह के कारण केवलज्ञान को प्राप्त करेंगे । इस ध्यान के द्वारा हृदय में बड़ा ही अपूर्व आनन्द उत्पन्न होता है और पापकर्मों का क्षणमात्र में नाश होता है ।

यह जिनभगवान के द्वारा कहा गया और आन्तरिक क्रोध, मान, माया, राग, द्वेष आदि शत्रुओं की शक्ति को नाश करनेवाला छह प्रकार का परम अभ्यन्तर तप है । महातपस्वी सुदर्शन इसे कर्म शत्रुओं के नाशार्थ प्रतिदिन धारण करते । इससे उनका अन्तरंग बड़ा ही पवित्र हो गया था । मन्त्र की शक्ति से जैसे सर्प सामर्थ्यहीन हो जाते हैं, काट नहीं सकते और काटे भी तो उनका जहर नहीं चढ़ता, उसी तरह इस तप द्वारा सुदर्शन के कर्म बड़े ही अशक्त हो गये थे । अपना कार्य वे कुछ न कर पाते थे । उस तप के प्रभाव से सुदर्शन की आत्म-शक्ति अत्यधिक बढ़ गयी, उन्हें कई ऋद्धियाँ प्राप्त हो गयीं, जो कि मोक्षमार्ग की सहायक थीं । सुदर्शन संसार के प्राणी मात्र में मित्रता की भावना भाते, अपने से अधिक गुणधारी मुनियों में आनन्द मानते, रोगादि के कष्ट से दु:ख पा रहे जीवों पर करुणा करते और अपने से वैर करनेवाले पापी लोगों में समभाव रखते । इन पवित्र भावनाओं को वे सदा भाते रहते थे । इसलिए उनके हृदय में राग-द्वेषादि दोषों ने स्वप्न में भी स्थान न पाया । किन्तु उसके निर्मल हृदय में रत्नमयी दीपक के समान एक प्रकाशमान पवित्र ध्यान-ज्योति, जो मोक्षमार्ग में पहुँचानेवाली है, सदा जला करती थी ।

इस प्रकार चारित्र और व्रतों को जिसने धारण किया, धर्म और शुक्लध्यान में अपने आत्मा को स्थिरता से लगाया, इन्द्रियों और कामदेव को पराजित किया, सब दोषों को नष्ट किया, संसार की चरम सीमा प्राप्त की और जो गुणों का समुद्र कहलाया, वह सुदर्शन मोक्षमार्ग में

जय-लाभ करे । उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ, वे मेरी आत्मशक्तियों को बढ़ावे ।
व्रतों के धारण करने से सब गुण प्राप्त होते हैं और आत्महित होता है । बुद्धिमान लोग व्रतों का आश्रय इसीलिए प्राप्त करते हैं कि इनसे शिव-वधू का सुख प्राप्त होता है । ऐसे व्रतों के लिए मैं भक्ति से नमस्कार करता हूँ । मेरी यह श्रद्धा है कि व्रतों को छोड़कर सुख-सम्पत्ति का देनेवाला और कोई नहीं है । इन व्रतों का मूल है क्रिया-चारित्र । ऐसे व्रतों में मैं अपने चित्त को लगाता हूँ और व्रतों से प्रार्थना करता हूँ कि वे मेरी सदा रक्षा करें ।
सुदर्शन और विमलवाहन मुनिराज मुझे अपने-अपने गुण प्रदान करें । जो मोक्षलक्ष्मी को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं, जो ध्यान के द्वारा सब पापरूपी विष को नष्ट कर ज्ञानरूपी समुद्र के पार पहुँच चुके हैं, जो शीलव्रत आदि उत्तम-उत्तम गुणों से युक्त हैं और धर्मात्माजन जिनकी सदा पूजा-प्रशंसा करते हैं, उन परम वीतरागी मुनिराजों को मेरा नमस्कार है ।

संकट पर विजय

संकट पर विजय
कथा :
सुदर्शन को आदि लेकर जितने धीरवीर अन्त:कृत केवली हुए । उपसर्ग सहते-सहते मृत्यु के अन्तिम समय में जिन्होंने केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष लाभ किया, उन मुनिराजों को मैं नमस्कार करता हूँ । वे मुझे भी अपने जैसी शक्ति प्रदान करें ।
महामुनि सुदर्शन अनेक देशों और शहरों में विहार करते और रास्ते में पड़नेवाले तीर्थों की यात्रा करते हुए गमन कर रहे थे । धर्म में उनकी बुद्धि बड़ी दृढ़ हो गयी थी । वे चलते समय जमीन को देखकर बड़ी सावधानी से चलते । ऐसे उद्धतपने से वे कभी पाँव नहीं धरते, जिससे जीवों को कष्ट पहुँचे । उन्हें कभी तो आहार मिल जाता और कभी न भी मिलता । मिलने पर न वे खुशी मनाते और न मिलने पर दुखी नहीं होते । उनके भावों में यह महान सम भावना उत्पन्न हो गयी थी । वे सदा मन-वचन-काय से वैराग्यभावना का विचार करते रहते । परमार्थ-साधन में उनकी बड़ी तत्परता थी । वे महा वीतरागी और निस्पृह महात्मा थे । यह सब कुछ होने पर भी उनकी एक महान उच्चाकांक्षा थी और वह यह कि । मोक्ष के लिये वे बड़ा उत्कण्ठित थे ।
सुदर्शन धीरे-धीरे पाटलिपुत्र (पटना) में पहुँचे । वहाँ श्रावकों के बहुत घर थे । एक दिन वे आहार के लिए निकले । रास्ते में जाते हुए वे इस बात का विचार करते जाते थे कि कौन घर उत्तम लोगों का है और कौन नीच लोगों का । कारण साधु लोग उत्तम पुरुषों के यहीं आहार लेते हैं । मुनिराज सुदर्शन जो आहार करते वह इसलिए नहीं कि शरीर पुष्ट हो, किन्तु इसलिए कि धर्म साधना के लिए शरीर का टिका रहने के लिए आहार आवश्यक जानकर करते थे ।
अपनी दिव्य सुन्दरता से कामदेव को लजानेवाले उस महान वीर युवा महात्मा सुदर्शन को जाते हुए उस अभयमती रानी की दासी ने, जिसका कि ऊपर विवरण आ चुका है, देखा । उसने तब अपनी मालकिन देवदत्ता वेश्या से कहा । देखो, जिस सुदर्शन मुनि की बावत मैंने तुमसे जिक्र किया था, वह यह जा रहा है । अब यदि तुम कुछ कर सकती हो, तो करो । इतनी याद दिलाते ही देवदत्ता को अपनी प्रतिज्ञा की याद हो उठी । उसने तब अपनी एक दासी को बुलाया और उसे नकली श्राविका बनकर सुदर्शन मुनि को लिवा ले आने को भेजा । उस दुष्टिनि ने जाकर उसको नमस्कार किया और आहार के लिए प्रार्थना की । सुदर्शन खड़े हो गये । वे निष्कपट और शुद्ध-हृदयी थे; सो उनने उस दुष्टिनि की ठग-विद्या को न जान पाया । दासी मुनि को देवदत्ता के घर में ले आई । यहाँ से वह सुदर्शन को एक-दूसरे कमरे में लिवा ले गयी और नमस्कार कर उस दुराचारिणी ने मुनि को एक पट्टे पर बैठा दिया ।
इतने में देवदत्ता भी वहाँ आकर पास ही रखे हुए पट्टे पर बैठ गई । मुनि के साथ नाना भाँति कुचेष कर वह बोली । प्यारे! तुम बड़े ही सुन्दर हो, तुम्हारी इस दिव्य सुन्दरता को देखकर बेचारा कामदेव भी शर्मिन्दा होता है । तुम्हारे सौभाग्य, तेजस्विता आदि को देखकर मन में एक अपूर्व आनन्द का स्रोता बहने लगता है । तुम गुणों के समुद्र हो । प्यारे! भाग्य ने तुम्हें सब कुछ दिया है । तुम्हारी भर जवानी की छटायें छूटकर जिधर उड़ती हैं, उधर ही वह सबको अपनी ओर खींचने लगती हैं । तब मैं जो तुम्हें इतना प्यार करती हूँ, इस पर तुमको आश्चर्य न करना चाहिए । तुम इतने बुद्धिमान होकर भी न जाने क्यों ऐसी झंझट में पड़े हो और इतना कष्ट सह रहे हो । बतलाइए तो इस दुर्धर तप को करके और ऐसा शारीरिक कष्ट उठाकर तुम क्या लाभ उठाओगे? और फिर तुमको करना ही क्या है, जिसके लिए ऐसा कष्ट उठाया जाय । तुम तो इन सब कष्ट को छोड़कर आनंद से यहीं रहो । मैंने तुम्हारी कृपा से बहुत धन कमाया है । मेरे पास सोने-जवाहरात

के बने अच्छे-अच्छे गहने-दागीने हैं । भोगोपभोग की एक से एक बढ़िया चीज है । अच्छे कीमती और सुन्दर रेशमी वस्त्र हैं । मैं अधिक तुमसे क्या कहूँ, मेरे यहाँ जिन वस्तुओं का संग्रह है, वह संग्रह एक राजा के महल में भी न होगा । इसके सिवा सर्वोपरि जैसे तुम सुन्दर, वैसी ही मैं सुन्दरी । भगवान ने । विधि ने आपकी मेरी बड़ी अलबेली जोड़ी मिलाई है । यह देखकर मेरा मन तुम पर अनुरक्त हुआ है । तब प्रियवर! प्रार्थना को मान देकर तुम यहीं रहना स्वीकार करो । तुम और हम खूब आनन्द-भोग करेंगे और इस जिन्दगी का मजा लूटेंगे । क्योंकि इस असार संसार में एक स्त्री रत्न ही सार है । इसके द्वारा सब इन्द्रियाँ परितृप्त होती हैं । चतुर पुरुषों को इसके साथ सुखोपभोग करना ही चाहिए । ब्रह्माजी ने संसार में जितनी भोगोपभोग की वस्तुएँ निर्माण की हैं, वे सब स्त्री और पुरुषों के आनन्द उपभोग के लिए हैं । इसलिए इन्द्रियों की तृप्ति के लिए इन भोगोपभोगों को, जो जीवन को सफल करनेवाले हैं, भोगने ही चाहिए । और जो स्वर्ग-सुख का कारण यह तप है, वह तो बुढ़ापे में वानप्रस्थाश्रम में घर-बार छोड़कर धारण किया जाता है । जो समझदार लोग हैं, वे तो इसी प्रकार जैसी-जैसी उनकी अवस्था होती है उसी प्रकार धर्म, **अर्थ**, काम और मोक्ष इन चार पुरुषार्थों का सेवन करते हैं । आपको भी वैसा ही करना चाहिए । देवदत्ता की ये सब बातें सुन-सुनाकर सुदर्शन मुनि ने उससे कहा । ओ बे-समझ मूर्खिणी! तूने यह जो कुछ कहा, वह निंद्य है । बुरा है । तू स्त्री को रत्न कहकर यह बतलाना चाहती है कि संसार की सब वस्तुओं में स्त्री श्रेष्ठ है, पर तेरा यह कहना सत्य नहीं । झूठा है । क्योंकि स्त्री कैसी ही सुन्दर क्यों न हो, पर जब उसके सम्बन्ध में विचार करते हैं, तब यह स्पष्ट जान पड़ता है कि उसके मुख में श्लेष्म-कफ, चर्म, हड्डी आदि को छोड़कर ऐसी कोई सुन्दर वस्तु नहीं जिसे अच्छे लोग प्यार कर सकें । स्त्रियों का उदर, जिसे बड़ी-बड़ी उपमाँए दी जाती हैं, मल, मूत्र, माँस, लोहू, मज्ज, हड्डी आदि दुर्गन्धित और निंद्य वस्तुओं से भरा हुआ है । उसमें ऐसी कोई मन को हरनेवाली चीज नहीं दिखायी पड़ती । स्त्रियों के स्तनों में माँस और खून के सिवा कोई पवित्र वस्तु नहीं । उनका योनिस्थान, जिससे कि सदा मल-मूत्रादि घृणित वस्तुएँ बहती रहती हैं, निंद्य और अपवित्रता की साक्षात् खान है । तूने जिन भोगोपभोग वस्तुओं को कामियों के लिए अच्छा बतलाया, बतला तो उनमें सार क्या है? और कौन उनमें ऐसी खूबी है जो वे तृप्ति की कारण कही जाँए? उनका मुँह, जिसे कामी लोग चाहते हैं । चूमते हैं, लारादि से युक्त है और सदा बदबू मारा करता है । उसका चूमना ऐसा है जैसा कुत्ते का मुर्दे और दुर्गन्धित शरीर को चाटना । जो विषय-लम्पटी लोग इस शरीर द्वारा भोगों को भोगते हैं और उसमें आनन्द मानते हैं, यदि विचार कर देखा जाये तो यह शरीर सब अपवित्रताओं का घर है । जिसके नौ द्वारों से सदा मलमूत्रादि दुर्गन्धित वस्तुएँ बहती रहती हैं, उस शरीर को भला ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो खिला-पिला कर पाले और वस्त्राभूषणों द्वारा सजावे । शरीर आत्मा का शत्रु है और शत्रु को कितना ही पाला-पोसा जाय पर अन्त में होगा वह दु:ख का कारण ही । यही हालत इस शरीर की है । इसे कितना ही खिला-पिलाकर पुष्ट करो । कष्ट न देकर आराम दो, पर यह अपने स्वभाव को न छोड़कर नाना भाँति रोगों को उत्पन्न करेगा और कष्ट देगा तथा परलोक में दुर्गति में पहुँचावेगा । इसलिए जो समझदार हैं । परलोक सुधारना चाहते हैं, वे इस शरीर को तप द्वारा सुखाकर अपने मनुष्य जन्म को सार्थक करते हैं । जिन अनेक प्रकार के भोगों को भोगकर भी कामी लोग जब तृप्त नहीं हुए, तब उन नरकों में ले जानेवाले भोगों से सत्पुरुष को क्या लाभ? लोग तो यह समझते हैं कि विषयभोगों से तृप्ति होती है, पर वे नहीं जानते कि कामातुर लोग ज्यों- ज्यों इन भोगों को भोगते हैं, त्यों-त्यों उनकी इच्छा अधिक अधिक बढ़ती ही जाती है-उनसे रंचमात्र भी तृप्ति नहीं होती । यह कामरूपी अग्नि असाध्य है । इसका बुझा देना सहज नहीं । यह सारे शरीर को खाक में मिलाकर ही छोड़ती है । यह सब अनर्थों का कारण है । जैसे-जैसे सहवास बढ़ता है, यह भी फिर उसी तरह अधिकाधिक बढ़ती जाती है । ये भोग जहरीले सर्पों से भी सैकड़ों गुणा अधिक कष्ट देनेवाले हैं । क्योंकि सर्प तो एक जन्म में एक ही बार प्राणों को हरते हैं और ये भोग नरक, तिर्यंच आदि कुगतियों में अनन्त बार प्राणों को हरते हैं । इन्हें तू नरकों में ले जानेवाले और दोनों जन्मों को बिगाड़नेवाले महान शत्रु समझ । उन रोगों का सह लेना कहीं अच्छा है, जो थोड़े दु:खों के देनेवाले हैं, पर इन भोगों का भोगना अच्छा नहीं, जो जन्म-जन्म में अनन्त दु:खों के देनेवाले हैं । कारण, रोगों को शान्तिपूर्वक सह लेने से तो पुराने पाप नष्ट होते हैं और भोगों को भोगने से उल्टे नये पापकर्म बन्ध होते हैं और फिर उनसे दुर्गति में दु:ख उठाना पड़ता है । जो मूर्खजन भोगों को भोगकर अपने लिए सुख की आशा करते हैं, समझना चाहिए कि वे कालकूट विष को खाकर चिर काल तक जीना चाहते हैं । पर यह उनकी बुद्धि का भ्रम है । जो काम से पीड़े गये लोग यह समझते हैं कि विषय-भोगों से हमें सुख प्राप्त होगा, समझो कि वे शीतलता के लिए जलती हुई आग में घुसते हैं । जिस प्रकार गौ के सींग दुहने से कभी दूध नहीं निकलता और सर्प में अमृत नहीं होता; उसी प्रकार विषय-भोगों द्वारा कभी सुख का लेश भी नहीं मिलता । यह समझकर जो विद्वान हैं । विचारवान हैं, उन्हें उचित है कि वे इन आत्मा के

महान शत्रु विषय-भोगों को अच्छे तेज वैराग्यरूपी खड्ग से मारकर सुख के कारण तप को स्वीकार करें । और देवदत्ता! तूने जो यह कहा कि तप बुढ़ापे में करना चाहिए, सो भी ठीक नहीं । तेरा यह कहना मिथ्या है और अपने तथा दूसरों के दु:ख का कारण है । क्योंकि कितने तो बेचारे ऐसे अभागे हैं कि वे गर्भ ही में मर जाते हैं और कितने पैदा होते-होते मर जाते हैं । कितने बालपन में मर जाते हैं और कितने कुमार अवस्था में मर जाते हैं । कितने जवान होकर मर जाते और कितने कुछ ढलती उम्र में ही मर जाते हैं । अग्नि सुखे काठ के ढ़ेर के ढ़ेर जैसे जलाकर खाक कर देती है, उसी तरह यह दुर्बुद्धि काल बालक, युवा, वृद्ध आदि का ख्याल न कर सबको मौत के मुख में डाल देता है । यह पापी काल प्रतिदिन न जाने कितने बालक, जवान और बूढ़ों को अपने सदा जारी रहनेवाले आगमन से मारकर मिट्टी में मिला देता है । इसलिए काल का तो कोई निश्चय नहीं कि वह किसी को तो मारे और किसी को न मारे; किन्तु उसके लिए तो आज का पैदा हुआ बच्चा और सौ वर्ष का बूढ़ा भी समान है । तब जो काल से डरते हैं, उन बुद्धिमानों को चाहिए कि वे तपरूपी धनुष चढ़ाकर रत्नत्रयमयी बाणों द्वारा कालरूपी शत्रु को पहले ही नष्ट कर दें । कुछ लोग यह विचारा करते हैं कि आत्महित के लिए तप धारण तो करना चाहिए, पर वह जवानी में नहीं, किन्तु बुढ़ापे में; ऐसे लोग बड़े मूर्ख हैं । कारण, वे तो विचारते ही रहते हैं और काल क्षणभर में उन्हें उठा ले उड़ता है । यह आयु, जिसे हम भ्रम से स्थिर समझ रहे हैं, हाथ की उएगलियों के छिद्रों से गिरते हुए पानी की तरह क्षण-क्षण में नष्ट हो रही है, इन्द्रियाँ शिथिल पड़ती जा रही हैं और जवानी विलीन होती जाती है । इसलिए जब तक कि शरीर स्वस्थ है-निरोग है, इन्द्रियों की शक्ति नहीं घटी है, बुद्धि बराबर काम दे रही है और संयम, व्रत, उपवासादि में बराबर प्रयत्न है, तब तक इस मोहरूपी योद्धा को और साथ ही काम तथा विषयों को नष्ट कर स्वर्ग-मोक्ष की प्राप्ति के लिए जितना शीघ्र बन सके, तप ग्रहण कर लेना उचित है । यही सब जानकर और यह समझकर कि मौत सिर पर सवार है, अपने आत्मक ल्याण के लिए योगी लोग तप और योगाभ्यास द्वारा इन्द्रियों के विषयों को नष्कर आत्महित का मार्ग धर्म-साधन करते हैं ।

सुदर्शन मुनि के इस प्रकार समझाने पर देवदत्ता निरुत्तर हो गयी । जैसे नागदमनी नामक औषधि से नागिन निर्विष हो जाती है । यह सही है कि देवदत्ता सुदर्शन मुनि को कुछ उत्तर न दे सकी, पर उसकी ईर्षा पहले से कई हजार गुणी बढ़ गयी । फिर उसने सुदर्शन को मात्र यह कहकर, कि तुम्हारी यह उम्र तप योग्य नहीं, तप तुम बुढ़ापे में धारण करना, उठाकर अपने पलंग पर, जिस पर कि एक बड़ा नरम गद्दा बिछा हुआ था, लिटा लिया और काम सुख के लिए वह उनके साथ अनेक प्रकार की विकार चेष्टाएँ करने लगी । देवदत्ता को इस प्रकार उपसर्ग करते देखकर सुदर्शन ने संन्यास लेकर प्रतिज्ञा की कि यदि इस उपसर्ग में मेरे प्राण चले जाँए, तब तो मैं अपने आत्महित के लिए अभी से जीवनपर्यन्त अनशन-व्रत धारण करता हूँ और कदाचित् दैवयोग से प्राण बच जाँए तो मैं पारणा करँगा । यह प्रतिज्ञा कर सुदर्शन मुनि ने शरीर से मोह छोड़ दिया और काठ की तरह निश्चल होकर अपने को भगवान के ध्यान में लगाया । यह देखकर दुष्टिनी देवदत्ता ने मुनि के स्थिर मन को विचलित करने, उनके ब्रह्मचर्य को नष्ट करने और अपने काम-सुख की सिद्धि के लिए उन पर उपद्रव करना शुरु किया । काम-वासना से अत्यन्त पीड़ित होकर उसने अपने शरीर के सब वस्त्रों को उतार दिया और नंगी होकर वह मुनि के गले से लिपट गयी । उनके शरीर को अपने हाथों के बीच में लेकर उनसे लिपट कर वह सेज पर सो रही । इतने पर भी जब मुनि को वह विचलित न कर सकी, तब उसने और भी भयंकर विकार चेष्टाएँ करना आरम्भ कीं । वह कभी मुनि की उपस्थ इन्द्री को अपने हाथों से अपने गुप्त अंग में रखती, कभी उनके हाथों को अपने स्तनों पर रखती, कभी उनके मुँह में अपना अपवित्र मुँह देती, कभी विकारों की गुलाम बनकर नंगी ही उनके सुन्दर शरीर पर जा पड़ती और काम-वासना से अनेक विकार चेष्टाएँ करती और कभी उनके नग्न शरीर को अपने शरीर पर लिटा लेती । इत्यादि कामरूपी अग्नि को बढ़ानेवाली नाना दुश्चेषओं को उसने अपने मुँह, स्तन, हाथ, योनि आदि द्वारा किया, कटाक्ष किया, हावभाव- विलास किया, खूब मनोहर आवाज से गाया, नाचा, श्रृंगार किया । मतलब यह कि उनके ब्रह्मचर्य-व्रत को नष्ट करने के लिए उसमें जितनी शक्ति थी, उसने वेश्या-योग्य विकारों के करने में कोई कमी नहीं रखी **अर्थ**ात् मुनि पर ऐसा घोरतर उपद्रव किया, जिसे देख कामी लोग अपनी कभी रक्षा नहीं कर सकते । इस महान दु:सह उपसर्ग में भी मुनिराज सुदर्शन मेरुवत् अचल रहे । उन्होंने अपनी वैराग्य भावना को बढ़ाने के लिये तब अपने पवित्र हृदय में इस प्रकार विचार करना शुरु किया । वे निर्मल विचार उनकी मनवचन-काय की क्रियाओं को रोकने में बड़े सहायक हुए । उन्होंने विचारा । ये वेश्यायें पाप की खान हैं । इन्हें नीच-ऊँच के साथ विषय-सेवन का विचार नहीं । शहर की गटर में जैसे मल-मूत्र बहुता है, उसी तरह इनके यहाँ नीच से नीच पुरुष आते रहते हैं । तब भला, ऐसी नीच इन वेश्याओं को कौन बुद्धिमान सेवेगा । जो नीच इन मद्य-माँस खानेवाली वेश्याओं के साथ विषय-सेवन करते हैं-उनके शरीर से अपने शरीर

का सम्बन्ध कराते हैं, उस समय जो परस्पर में श्वासोच्छवास संमिश्रण होता है, उससे उन लोगों के खाने-पीने आदि का कोई व्रत-नियम नहीं बन सकता । इनके साथ सम्बन्ध करने से जो गर्भ रहता है, उससे उन व्यभिचारी लोगों के कुल का नाश होता है, कलंक लगता है और सातों व्यसनों का वे फिर सेवन करने लगते हैं । इस वेश्या-सेवन के पाप से यह तो हुई इस लोक में हानि और परलोक में वे विषयल म्पटी घोर दु:खों के देनेवाले नरकों में जाते हैं । इस प्रकार वेश्याओं के दोषों पर विचार कर सुदर्शन मुनि ने अपने मन को वैराग्यरूपी दृढ़ कवच से ढक लिया और संकल्प रहित उत्कृष्ट आत्मध्यान में उसे लगाकर आप मेरु-से स्थिर हो गये । सब क्रियाकर्म से रहित हो वह बड़ी स्थिरता से ध्यान करने लगे । धन्य महात्मा सुदर्शन! देवदत्ता उन्हें फिर उसी तरह ध्यान-निश्चल देखकर ईर्षा से दु:ख देनेवाले कामविकारों के करने को तैयार हो गयी और मुनि से बोली । सुनो, मैं तुमसे अन्तिम बात कहती हूँ । यदि तुम मेरी बात न मानोगे तो मैं अब ऐसा घोर उपद्रव करँगी कि उससे तुम्हारी जान ही चली जाँगी । इस पर सुदर्शन कुछ न कहकर ध्यान करते रहे । उन्हें कुछ न कहते देखकर देवदत्ता ने उनसे अनेक प्रकार काम के बढ़ानेवाले वचन कहे, उनकी गुप्तेन्द्री को अपने हाथों से उत्तेजित कर काम को बढ़ानेवाली नाना भाँति विकार चेष्टाएँ कीं और मनमानी बुरी-भली सुनाई । इस प्रकार कोई तीन दिन और तीन रात तक उसने जितना उससे बना, मुनि पर उपसर्ग किया, उन्हें दु:सह कष्ट दिया । पर सुदर्शन ने पर्वत के समान स्थिर हो इन सब दु:सह परीषहों को सहा । महातपस्वी, महामना सुदर्शन ऐसे समय भी रत्तीभर अपने ध्यान से न चले ।

देवदत्ता ने सुदर्शन को इतना कष्ट दिया, उससे न तो उन्हें उस पर कुछ द्वेष हुआ और न उसकी काम-सुख सम्बन्धी बातों से उन्हें किसी प्रकार रागभाव-प्रेम हुआ । उन्होंने द्वेष या प्रेम सम्बन्धी कलुषता का हृदय में विचार तक भी न आने दिया । वे मध्यस्थ बने रहे । इससे उनके हृदय की जो निर्मलता थी, वह आत्मध्यान के सम्बन्ध से बहुत ही बढ़ गयी । सुदर्शन को ऐसा स्थिर अचल देखकर देवदत्ता उद्विग्न तो बहुत हुई, पर वह उस अग्नि की तरह, जो तृण रहित जमीन पर पड़ी कुछ कर नहीं सकती, सुदर्शन का कुछ कर न सकी ।

जिसकी इतनी धीरता, जिसका मन इतना अविकारी उस महात्मा का दुष्ट पुरुष व विकार-वश हुई वेश्या क्या कर सकती है । यह सम्भव है कि कभी दैवयोग से पर्वत चल जाँए, पर यह कभी सम्भव नहीं कि योगियों का निर्विकल्प मन विकारों से चल जाय ।

वे महात्मा धन्य हैं और वे ही संसार में पूज्य हैं, जिनका मन दु:सह परीषह या कष्ट के आने पर भी न चला । सुदर्शन की इस स्थिरता ने देवदत्ता के अभिमान को नष्ट कर दिया । वह सोचने लगी, यह बड़ा धीरजवान् है । इसे मैं किसी तरह विचलित नहीं कर सकती । इसे मैं अब अपने घर से बाहर भी कैसे करँगी? इस विचार के साथ उसे एक युक्ति सूझी । रात का समय तो था ही और मुनि भी शरीर का मोह छोड़कर आत्मध्यान कर रहे थे, सो इस योग को अच्छा समझ देवदत्ता मुनि को कन्धे पर उठाये घर से निकली और चौकन्नी हो इधर-उधर देखती हुई जलती चिता से भयंकर श्मशान में ले-जाकर उसने उन्हें कायोत्सर्ग ध्यान से खड़ा कर दिया । इस प्रकार अपने आत्मबल से जिस महात्मा सुदर्शन ने देवदत्ता द्वारा किये गये, ब्रह्मचर्य को नष्ट करनेवाले दु:सह काम-विकारों पर विजय लाभ किया, और जो अपने मन-वचन-काय की क्रियाओं को रोककर ऐसे बलवान बन गये कि जिसे पर्वत भी विचलित नहीं कर सकते थे । यह जानकर बुद्धिमानों को परीषह-जय द्वारा अपना आत्मबल प्रगट करना चाहिए ।

वे अरहन्त भगवान, जो संसार द्वारा वन्दनीय और सब जीवों का हित करनेवाले, सब दोषों से रहित और सर्वोत्कृष्ट हैं; वे सिद्ध भगवान, जो उत्कृष्ट गुणों के धारक और अन्त रहित हैं । जिनका कभी नाश न होगा; वे आचार्य, जो सदा धर्म-साधन में तत्पर और पंचाचार के पालनेवाले हैं तथा बुद्धिमान लोग जिन्हें नमस्कार करते हैं; और वे विद्वान् उपाध्याय तथा साधु । ये पाँचों परमेष्ठी मुझे अपने-अपने गुण प्रदान करें । मुझे अपना सरीखा महान योगी बनावें ।

सुदर्शन का निर्वाण-गमन

सुदर्शन का निर्वाण-गमन

कथा :

जिन्होंने सब कर्मों को जीत लिया, उन परम धीर और गुणों के समुद्र सुदर्शन मुनि को मैं नमस्कार करता हूँ । वे मुझे अपनी शक्ति प्रदान करें ।

देवदत्ता उन्हें श्मशान में खड़ा कर चली गयी । वे उसी तरह स्थिर-मन, जितेन्द्री और निर्विकार हो ध्यान करते रहे । इसी समय वह जो पूर्व जन्म में अभयमती रानी थी और जिसने पहले भी सुदर्शन मुनि पर उपसर्ग किया था, विमान मैं बैठी हुई आकाश मार्ग से जा रही थी ।

मुनि के ऊपर ज्यों ही उसका विमान आया कि वह मुनि के योग-प्रभाव से आगे न बढ़ पाया । वहीं कीलित हो गया । विमान को ठहरा देख व्यन्तरी को बड़ा आश्चर्य हुआ । तब उसने विमान के ठहर जाने का कारण जानने के लिए चारों और नजर दौड़ाई । उसे नीचे की ओर दिखायी दिया कि सब परिग्रह रहित, परम गुणवान और शरीर तक से मोह छोड़े हुए एक दिगम्बर महात्मा ध्यान कर रहे हैं । उन्हें देखते ही व्यन्तरी के क्रोध का कुछ ठिकाना न रहा । उसने कु-अवधिज्ञान से मुनि के साथ जिस कारण उसकी शत्रुता हुई थी, उसे जान लिया । उसे यह भी ज्ञान हो गया कि इन मुनि ने मेरी रति-कामना को भी पूरा नहीं किया था और इसी कारण मुझे मरना पड़ा था । तब उस बैर का बदला चुकाने के लिए उसने मुनि पर उपसर्ग करना विचारा । वह आकाश से नीचे उतरकर सुदर्शन के पास आयी और अपनी बड़ी डरावनी क्रूर सूरत बना मुनि से बोली । सुदर्शन! मुझे खूब याद है कि मैं पूर्व जन्म में एक राजरानी थी । मैंने तब बड़ी आशा से तेरे साथ सम्भोगसुख की इच्छा की थी; परन्तु तूने अपने इस धीरता के अभिमान में आकर मेरी उस इच्छा का तिरस्कार किया था । उसी दु:ख के मारे मरकर मैं इस जन्म में व्यन्तरी हुई । मैंने पहले भी तुझ पर उपसर्ग किया था, परन्तु उस समय किसी देव ने तुझे मौत के मुख से बचा लिया था । अस्तु, अब बतला कि इस समय मैं जो तुझे कष्ट दूँगी, उनसे तेरी कौन रक्षा करेगा? इस प्रकार कड़े वचनों के साथ उस पापिनी ने मुनि पर उपसर्ग करना शुरु किया । उसे विक्रियाऋद्धि तो प्राप्त थी ही, सो उसने नाना भाँति की भयावनी और क्रूर सूरतें बनाकर मुनि को डराया, अनेक दुर्वचन कहे, बाँधा, मारापीटा । उन्हें कष्ट देने में उसने कोई कमी न रखी । उस समय मुनि के योगबल से देवों के आसन कम्पित हुए । जिस देव ने सुदर्शन का उपसर्ग पहले भी दूर किया था, वही अपने आसन के कम्पित होने से सुदर्शन पर फिर उपसर्ग हुआ जानकर उसी समय वहाँ आया । सुदर्शन की उसने तीन प्रदक्षिणा दी, पूजा की और उन्हें नमस्कार कर वह उस व्यन्तरी से बोला ।

देवी! तुझे इन महा मुनि पर उपसर्ग करना उचित नहीं । वह धर्म का नाश करनेवाला, पाप का खान, निन्दनीय और नरकों में ले जानेवाला है । जो पापी लोग इन मुनियों की निन्दा करते हैं, वे नरकादि दुर्गति में भव-भव में निन्दा के पात्र होते हैं । जो मूर्ख इन निस्पृह महात्माओं को कष्ट देते हैं । दु:ख पहुँचाते हैं, वे दुर्गतियों में महान दु:ख उठाते हैं । और जो इनका मन-वचन-काय से थोड़ा भी बुरा चिन्तन करते हैं, वे पग-पग पर हजारों दु:खों को भोगते हैं । देवी! यह सब जानकर तुझे इन महात्मा के साथ शत्रुता करना उचित नहीं । तू इनकी भक्ति कर, इनके हाथ जोड़, जिससे तेरा कल्याण हो । कारण कि जो योगियों की भक्ति करते हैं, वे उस पुण्य के उदय से सब जगह सौभाग्य, सुख-सम्पत्ति प्राप्त करते हैं । जो मुनियों के चरण-कमलों में अपना मस्तक नवाते हैं, उन्हें फिर इन्द्रादि देव तक पूजते हैं । नमस्कार करते हैं और जो भव्यजन ऐसे योगियों के चरणों की पूजा करते हैं, वे सारे संसार द्वारा पूज्य होते हैं । इत्यादि गुण-दोष, हानि-लाभ विचार कर तुझे उचित है कि इनके साथ ईर्षाभाव छोड़कर तू अपने कल्याण के लिए इनकी भक्ति करे । । यक्ष ने व्यन्तरी को इस प्रकार बहुत समझाया, पर इससे उसको रंचमात्र भी शान्ति न हुई । किन्तु उसने उल्टी लाल आँख कर उस यक्ष को घुड़की बताना चाहा ।

उसकी यह दशा देख यक्ष ने सोचा । दुर्षे को दिया धर्मोपदेश उन्हें शान्ति न पहुँचाकर उनकी क्रोधाग्नि को और भड़का देता है । ऐसे लोगों को समझाना सर्प को दूध पिलाने के बराबर है । यक्ष ने अपने कहे का कुछ उपयोग होता न देखकर देवी को जरा कड़े शब्दों में फटकारा और मुनि का उपसर्ग दूर करने के लिए वह बोला । पापिनी! दुराचारिणी!! मुनि पर जो तूने उपसर्ग करना विचारा है, याद रख इस महापाप से तुझे दुर्गति में जो दु:ख भोगना पड़ेगा, वह वचनों द्वारा नहीं कहा जा सकता । इसलिए मैं तुझे समझाता हूँ कि तू मेरे कहने से अपने इस दुराग्रह को छोड़ दे । यदि तूने अब भी अपने आग्रह को न छोड़ा तो फिर मुझे भी तुझे इसका प्रायश्चित्त देने के लिए लाचार हो तैयार होना पड़ेगा । अब भी अपने भले के लिए समझ जा ।

व्यन्तरी उसकी फटकार से शान्त न हुई, किन्तु क्रोधान्ध हो उससे लड़ने को तैयार हो गयी । दोनों में बड़ी भारी लड़ाई छिड़ी । दोनों ही को विक्रियाऋद्धि प्राप्त थी, तब उनके बल का क्या पूछना? दोनों ही ने अपनी-अपनी दैवी शक्ति से अनेक नये-नये आयुध आविष्कार किये, अनेक विद्यायें प्रगट कीं और भयानक लड़ाई लड़ी । उनकी यह लड़ाई कोई सात दिन तक बराबर चलती रही ।

आखिर व्यन्तरी की शक्ति शिथिल पड़ गयी । यक्ष को विजयश्री प्राप्त हुई । व्यन्तरी उसके सामने अब ठहर न सकी । वह भाग गयी । इसी समय महायोगी सुदर्शन ने योग-निरोध कर क्षपकश्रेणी आरोहण की, जो मोक्ष जाने के लिए नसैनी जैसी है । इसके बाद उन्होंने आत्मानुभव से उत्पन्न हुए और कर्मरूपी वन को भस्म करनेवाले शुक्लध्यान के पहले पाये का निर्विकल्प निरानन्दमय हृदय में ध्यान करना शुरु किया । इस ध्यान के बल से परमानन्द स्वरूप सुदर्शन के बहुत सी कर्म-प्रकृतियों के साथ-साथ मोहनीय कर्म का नाश हो गया । इस प्रकार मोहशत्रु का जयलाभ कर इनने शीलरूपी कवच द्वारा अपने आत्मा को ढका और गुणसेना को लिये हुए वे चारित्ररूपी

रणभूमि में उतरे । यहाँ वे उपशमरूपी हाथी पर चढ़कर ध्यानरूपी खड्ग को हाथ में लिये कर्मशत्रुओं पर विजय करने के लिए एक वीर योद्धा से शोभने लगे । वहाँ इनने बड़ी शीघ्रता के साथ उछलकर । परिणामों को उन्नत कर एक ऐसी छलाँग मारी कि देखते-देखते अत्यन्त दुर्लभ और केवलज्ञान के कारणभूत क्षीणकषाय नाम के गुणस्थान को प्राप्त कर लिया । फिर शेष बचे एक योग के द्वारा शुद्ध हृदय से दूसरे शुक्लध्यान एकत्ववितर्क-अविचार का, जो मणिमय दीपक की तरह प्रकाश करनेवाला है, इनने ध्यान किया । इस ध्यान के बल से बाकी बचे तीन घातिया कर्मों का भी इन्होंने नाश कर दिया । जैसे राजा अपने शत्रुओं को नष्ट कर देता है, इस प्रकार त्रेसठ कर्मप्रकृतियों का नाश कर सुदर्शन ने आत्मशत्रुओं पर विजय-लाभ किया । इसी समय इस अपूर्व विजय-लाभ से लोकालोक का प्रकाशक, जगत्पूज्य और मुक्ति-सुन्दरी के मुख देखने को काँच जैसा केवलज्ञान उन्हें प्राप्त हो गया । इसी के साथ उन्हें नौ केवललब्धियाँ प्राप्त हुईं । वे ये हैं । अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त दान, धर्मोपदेश कृत अनन्त लाभ, पुण्य से होनेवाला पुष्पवृष्टि आदि रूप अनन्त भोगस मवसरण सिंहासनादिरूप अनन्त उपभोग, जिसकी शक्ति का पार नहीं ऐसा अनन्त वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और चन्द्रमा के समान निर्मल यथाख्यातचारित्र ।

सुदर्शन को प्राप्त हुए इस केवलज्ञान के प्रभाव से सहसा स्वर्ग के देवों के आसन कम्पित हुए, मुकुट विनम्र हुए, महलों में फूलों की वर्षा हुई, नाना भाँति के बाजे बजे । इनके सिवा और भी कितने ही आश्चर्य हुए । इन आश्चर्यों से चारों काय के देवों ने अन्त:कृत केवली सुदर्शन को केवलज्ञान हुआ जान लिया । तब उन्होंने अंजलि जोड़कर भगवान को परोक्ष ही नमस्कार किया और उनके ज्ञानकल्याण की पूजन को वे तैयार हुए ।

इन्द्र ने तब पहले ही भगवान के विराजने को गंधकुटी के रचने की कुबेर को आज्ञा की । इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने आकर एक भव्य और सुन्दर सुवर्णमय गन्धकुटी बनायी । उसमें उसने नाना भाँति के सुन्दर-सुन्दर रत्नों की जड़ाई की । ध्वजा, सिंहासन, छत्र, चंवर आदि द्वारा उसे विभूषित किया । मानस्तम्भों की रचना की । भगवान के द्वारा भव्य जन धर्म लाभ करें, संसार के जीवों का कल्याण हो, यह उसका उद्देश्य था । इसके बाद सब देवगण अपने-अपने विमानों पर चढ़कर दिव्य वैभव के साथ जय-जयकार करते, गाते बजाते और दसों दिशाओं को शब्दमय करते भगवान सुदर्शन के केवलज्ञान की पूजा के लिए आये । उनके साथ उनकी देवियाँ भी आयीं । उनका धर्मप्रेम उनके आनन्दमय प्रसन्न चेहरे से टपक पड़ता था । भगवान जहाँ गन्धकुटी पर विराजे थे, वहाँ आकर पहले ही उन्होंने गन्धकुटी की तीन प्रदक्षिणा की और फिर सब शरीर झुका भगवान को पंचांग नमस्कार किया । इसके बाद उन्होंने बड़ी भक्ति के साथ सुवर्णर त्नमयी झारी में भरे जल, मलयागिरि चन्दन, मोतियों के अक्षत, कल्पवृक्षों के फूल, अमृत के बने नैवेद्य, मणिमय प्रदीप, दशांग धूप, सुन्दर और सुगन्धित फल आदि स्वर्गीय द्रव्यों द्वारा भगवान के चरण-कमलों की पूजा की, फूलों की वर्षा की, नृत्य किया, गाया, बजाया और खूब आनन्द-उत्सव मनाया । उनका पूजा द्रव्य, उनका गीत-संगीत देखकर लोगों को आश्चर्य होता था । उनकी सभी बातें निरुपम थीं । भक्ति के वश हुए वे सब देवगण पूजन पूरी हुए बाद भगवान को नमस्कार कर उनकी स्तुति करने लगे ।

भगवन्, आप धन्य हैं । आपकी यह अद्भुत धीरता हमें आश्चर्य पैदा कर रही है । आप अनन्त कष्ट के जीतनेवाले महान पर्वत हैं । प्रभो! आप ही पूज्यों के पूज्य, गुरुओं के गुरु, ज्ञानियों के ज्ञानी, देवों के देव, योगियों के योगी, तपस्वियों के तपस्वी, तेजस्वियों के तेजस्वी, गुणियों के गुणी, विजेताओं के विजेता और प्रतापियों के प्रतापी हैं । स्वामी! आप ही हमारे मनोरथों के पूरे करनेवाले और दिव्यरूप के धारी हैं; संसार के स्वामी और भव्यजनों के हित में तत्पर रहते हैं; केवलज्ञानरूपी नेत्र से युक्त और संसार में आनन्द के बढ़ानेवाले हैं; सब देवगण तथा चक्रवर्ती आदि महापुरुषों द्वारा पूज्य और भव्यजनों को संसार-समुद्र से पार करनेवाले परम बन्धु हैं । भगवन्! आप ही हमें इन्द्रिय-सुख एवं शिव-सुख के देनेवाले हैं । प्रभो! आपके समान उपसर्गों का जीतनेवाला धीर इस समय संसार में कोई नहीं । नाथ! यही क्या, किन्तु आपमें तो अनन्त गुण हैं । उनका वर्णन गणधर भगवान तक तो कर ही नहीं सकते, तब हम जैसे अल्पज्ञों की, जो एक बहुत ही साधारण ज्ञान रखते हैं, क्या चली । कृपा के भण्डार! यही समझ हमने आपकी स्तुति के लिए अधिक कष्ट उठाना उचित न समझा । आप गुणों के समुद्र हैं, अनन्त-चारित्र और अनन्त सुख के धारक हैं, दिव्यरूपी और परमात्मा है । सबसे उत्कृष्ट हैं, मुक्ति-सुन्दरी के स्वामी और आनन्द के देनेवाले हैं । इसलिए भक्तिपूर्वक आपके चरण-कमलों को हम नमस्कार करते हैं । गुणसागर! हमने जो आपकी स्तुति की, वह इस आशा से नहीं कि आप हमें संसार की उच्च से उच्च धनस म्पत्ति, ऐश्वर्य-वैभव दें; किन्तु हम चाहते हैं आपकी सरीखी आत्मशक्ति, जिसके द्वारा मोक्षमार्ग को सुख-साध्य बना सकें । कृपाकर आप हमें यही शक्ति प्रदान करें, यह हमारी सानुरोध सानुनय

आपसे बारबार प्रार्थना है । देवता लोग इस प्रकार भगवान की स्तुति-प्रार्थना कर धर्मोपदेश सुनने के लिए भगवान के चारों ओर बैठ गये । तब भगवन सन्मार्ग की प्रवृत्ति के लिए दिव्यध्वनि द्वारा धर्मतत्त्व का, जिसमें कि सब पदार्थ गर्भित हैं, उपदेश करने लगे । वे बोले । भव्यजनों! तुम आत्महित करना चाहते हो, तो इन विषयरूपी चोरों को नष्ट कर धर्म का पालन करो । यह धर्म स्वर्ग और मोक्ष-लक्ष्मी की प्राप्ति का वशीकरण मन्त्र है । इस धर्म के दो भेद हैं । पहला यतिधर्म और दूसरा श्रावकधर्म या गृहस्थधर्म । श्रावकधर्म सुख-साध्य है और स्वर्ग का कारण है । मुनिधर्म कष्साध्य है और साक्षात् मोक्ष का कारण है । मुनिधर्म में किसी प्रकार का आरम्भ-सारम्भ, बणिज-व्यापार नहीं किया जाता । वह सर्वथा निष्पाप है, परमोत्कृष्ट है, साररूप है और सुख का समुद्र है । सम्यग्दर्शन के साथ सप्त व्यसन का त्याग, आठ मूलगुणों का धारण, बारह व्रतों का पालन और ग्यारह प्रतिमाओं का ग्रहण, यह सब श्रावकधर्म है । श्रावकधर्म एकदेशरूप होता है । एकदेश का मतलब यह है कि जैसे ब्रह्मचर्यव्रत दोनों ही धर्मों में धरण किया जाता है, किन्तु गृहस्थधर्म का पालन करनेवाला अपनी स्त्री के साथ सम्बन्ध कर सकता है, पर मुनिधर्म का पालक स्त्री-मात्र का त्यागी होता है । इसी प्रकार अहिंसाव्रत सत्यव्रत, अचौर्यव्रत, परिग्रह-परिमाणव्रत आदि में समझना चाहिए । इसके सिवा मुनिधर्म में और भी कई विशेषताँए हैं ।

उक्त बातों के सिवा श्रावकधर्म की और भी कई बातें हैं । और वे श्रावकों के लिए आवश्यक हैं । जैसे अपनी आयुष्य के बढ़ानेवाली जिनभगवान की पूजा करना, निग्रन्थ गुरुओं की भक्तिपूर्वक उपासना -सेवा करना, जैनशास्त्रों का स्वाध्याय करना, व्रत-संयम का पालना, बारह प्रकार तप धारण करना और आहारदान, औषधदिान, अभयदान तथा ज्ञानदान, इन चार दानों का देना । ये छह गृहस्थों के नित्यकर्म कहलाते हैं । इस श्रावक धर्म को जो सम्यग्दर्शन सहित पालन करते हैं, वे सर्वार्थसिद्धि का सुख लाभ कर क्रम से मोक्ष जाते हैं । मुनिधर्म महान धर्म है । इसमें तेरह प्रकार चारित्र, अटईस मूलगुण, चौरासी लाख उत्तर गुण और बारह प्रकार तप धारण किया जाता है । मन-वचन-काय की क्रियाओं को रोका जाता है और उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव आदि धर्म के दस परम लक्षणों का पालन किया जाता है । मोक्ष का साक्षात् प्राप्त करानेवाला यही धर्म हैं । इसे संसार-शरीर-भोगादि से सर्वथा मोह छोड़े हुए मुनि ही धारण कर सकते हैं । जो रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के धारी इस यति-धर्म को धारण करते हैं, वे संसारपूज्य होकर अन्त में मोक्षलक्ष्मी के स्वामी होते हैं ।

जिनशासन में सात तत्त्व कहे गये हैं । वे हैं । जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष । इनका यथार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन का कारण है । इनका संक्षेप स्वरूप इस प्रकार है ।

जीव उसे -कहते हैं । जिसमें चेतना-जानना और देखना पाया जाँ । जो व्यवहार से दस प्राणों और निश्चय से चार प्राणों का धारक हो, उपयोगमय हो, अनादि हो, अपने कर्मों का कर्ता और भोक्ता हो तथा अनन्त गुणों का धारक हो ।

अजीव उसे कहते हैं । जिसमें चेतना **अर्थ**ात् देखना-जानना न पाया जाय । इसके पाँच भेद हैं । पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल । पुद्गल वह है । जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण ये चार बातें हों । धर्म वह है । जो जीव और पुद्गलों को चलने में सहायक (निमित्त) हो, जैसे मछली को जल । अधर्म वह है । जो उक्त दोनों द्रव्यों को ठहराने में सहायक हो । जैसे रास्तागीर को वृक्षों की छाया । आकाश उसे कहते हैं । जो सब द्रव्यों को स्थानदान दे । काल के दो भेद हैं । व्यवहार-काल और निश्चय-काल । व्यवहार-काल वर्ष, महीना, दिन, प्रहर, घड़ी, मिनिख्, सैकेंड आदि रूप है और निश्चय-काल परिवर्तनरूप है । वह पुद्गलादि द्रव्यों के परिणमन से जाना जाता है । अर्थात् उनकी जो समयस मय में जीर्णता । नवीनतारूप पर्यायें बदला करती हैं, वे ही 'निश्चयकाल कोई खास द्रव्य है', ऐसी विश्वास कराती है ।

आस्रव : मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय आदि द्वारा जो कर्म आते हैं, वह आस्रव है । यह संसार में जीवों को अनन्त काल तक भ्रमण कराता है ।

बन्ध : कर्म और आत्मा का परस्पर में एकक्षेत्ररूप होना बन्ध है । जैसे दूध में पानी मिला देने से उन दोनों की पृथक्पृथक् सत्ता नहीं जान पड़ती । बन्ध के-प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध ऐसे चार भेद हैं । यह बन्ध सब दु:खों का कारण है ।

संवर : आत्मध्यान, व्रत, तप आदि द्वारा कर्मों के आगमन को रोक देने को संवर कहते हैं । यह मोक्ष का कारण है, इसलिए इसे प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए ।

निर्जरा : पूर्वस्थित कर्मों का थोड़ा-थोड़ा क्षय होने को निर्जरा कहते हैं । इसके दो भेद हैं । सविपाकनिर्जरा और अविपाकनिर्जरा । कर्म अपना फल देकर जो नष्ट हो, वह सविपाकनिर्जरा है और तपस्या द्वारा जो कर्म नष्ट किये जाँए, वह अविपाकनिर्जरा है ।

मोक्ष : आत्मा के साथ जो कर्मों का सम्बन्ध हो रहा था, उसका सर्वथा नष्ट हो जाना । आत्मा से कर्मों का सदा के लिए सम्बन्ध छूट जाना, वह मोक्ष है । कर्मों का सम्बन्ध छूटने से आत्मा अत्यन्त शुद्ध हो जाता है । फिर कभी उसके साथ कर्मों का सम्बन्ध नहीं होता । इस अवस्था में आत्मा अनन्त गुण का धारी हो जाता है । इन सात तत्त्वों के शंकादि दोषरहित श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहते हैं । यह सम्यग्दर्शन मोक्ष प्राप्त करने की पहली सीढ़ी है । पदार्थों का जैसा स्वरूप है, उसे वैसा जानना सम्यग्ज्ञान है । यह ज्ञान संसार से अज्ञानरूपी अन्धकार को नष्ट करनेवाला दीपक है ।

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील आदि पाँच पापों के छोड़ने तथा पाँच समिति और तीन गुप्ति के पालने को सम्यक्चारित्र कहते हैं । इस प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों को व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं । यह सब प्रकार के अभ्युदय और रदि्धि-सिद्धि का देनेवाला है । इसके फल से आत्मा सर्वार्थसिद्धि लाभ करता है । यह हुआ व्यवहाररत्नत्रय । और निश्चयरत्नत्रय इस प्रकार है ।

ज्ञानी पुरुष अनन्त गुणमय अपने आत्मा का जो अन्तरंग में श्रद्धान करते हैं, वह निश्चय सम्यग्दर्शन है; केवलज्ञानस्वरूप सिद्ध समान आत्मा का जो अनुभव करते हैं । उसे जानते हैं, वह निश्चय ज्ञान है और परम-आनन्द के समुद्ररूप अपने आत्मा का अन्तर में आचरण करते हैं । पर पदार्थों में राग-द्वेष करते हुए आत्मा को उस ओर से हटाकर अपने आप में स्थिर करते हैं, वह निश्चय सम्यक् चारित्र है । वह निश्चयरत्नत्रय उसी भव से मोक्ष-प्राप्ति का कारण और बाह्य चिन्ताओं से रहित सब गुणों का स्थान है । इस प्रकार रत्नत्रय के दो भेद होने से मोक्षमार्ग के भी दो भेद हो गये । मोक्ष की इच्छा करनेवाले को यह रत्नत्रय धारण करना चाहिए । यह मुक्ति-स्त्री का एक महान वशीकरण है । मोह का नाश कर जो भव्यजन मोक्ष को गये और जाँएगे, वे इसी दो प्रकार के रत्नत्रय द्वारा । इसे छोड़कर मोक्ष जाने का और कोई मार्ग नहीं है । यह जानकर बुद्धिमानों को इस इन्द्रियों के स्वामी मोह-शत्रु का नाश कर आत्महित के लिए दो प्रकार का रत्नत्रय धारण करना चाहिए । इस प्रकार सुदर्शन केवली के मुख-चन्द्रमा से झरे धर्मामृत को पीकर देव और नर बहुत सन्तुष्ट हुए । उस समय कितने ही भव्यजनों को मोक्षमार्ग का स्वरूप जानकर वैराग्य हो गया । उन्होंने मोह का नाश कर पवित्र जिनदीक्षा ग्रहण कर ली । कितनों ने भगवान के द्वारा धर्म का स्वरूप सुनकर धर्मसिद्धि और मोक्ष के लिए अणुव्रत आदि व्रतों को धारण किया । कितनी विवेकिनी स्त्रियों ने उपचारम हाव्रत ग्रहण किये । कितनी ने श्राविकाओं के व्रत लिये । कितने पशुओं ने भी भगवान के द्वारा बोध को प्राप्त होकर धर्म प्राप्ति के लिए काललब्धि के अनुसार अपने योग्य व्रतों को ग्रहण किया । कुछ देवों, कुछ मनुष्यों, कुछ देवियों और कुछ स्त्रियों ने चन्द्रमा के समान निर्मल सम्यक्त्व को ही धारण किया । उस व्यन्तरी ने भी भगवान के मुख से धर्मरसायन का पान कर हलाहल विष के समान मिथ्यात्व को मन-वचन-काय से छोड़ दिया । अपनी आत्मा की बड़ी निन्दा कर उसने भगवान के चरणों को नमस्कार कर मोक्ष प्राप्ति के **अर्थ** मन-वचन-काय की शुद्धिपूर्वक सम्यग्दर्शन ग्रहण किया । और जो वह अभयमति की धाय तथा वेश्या थी, उन सबने सुदर्शन केवली के मुँह से धर्म का उपदेश सुनकर अपने पापकर्म पर बड़ा दु:ख प्रगट किया । उन्होंने अपनी बड़ी निन्दा की, इसके बाद देवताओं, चक्रवर्तियों, विद्याधरों आदि द्वारा सेवनीय सर्वज्ञ सुदर्शन मुनि के चरणों को नमस्कार कर उन सबने अपने-अपने योग्य व्रत ग्रहण किये । सुदर्शन की स्त्री मनोरमा सुदर्शन को केवलज्ञान हुआ सुनकर अपने पुत्र के मना करने पर भी धर्म-सिद्धि के लिए सुदर्शन केवली के पास आयी । उन्हें नमस्कार कर उसने भगवान का उपदेश सुना । उससे उसे बड़ा बैराग्य हो गया । उसने मोक्ष प्राप्ति की कारण जिनदीक्षा / आर्यिकाव्रत स्वीकार कर ली । इसके बाद सुदर्शन केवली भव्यजनों को बोध देने और मोक्षमार्ग का प्रचार करने के लिए चारों संघों के साथ नाना देश और नगरों में विहार करने लगे । उन लोकनाथ भगवान ने अपने धर्मोपदेशामृत से अनेक जनों को सन्तुष्ट किया, अनेकों को मोक्षमार्ग में लगाया, अनेकों को अनमोल रत्नत्रय से विभूषित किया, अनेकों को जगत का हित करनेवाले सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान, ये महान रत्न दिये, अनेकों को धर्म-रत्न दिया और अनेकों को तप-रत्न दिया । इस प्रकार सब संसार के जीवों को महान दान देकर भगवान सुदर्शन कल्पवृक्ष की तरह शोभा को प्राप्त हुए ।

अन्त में भगवान ने योग-निरोध कर धर्मोपदेश करना छोड़ दिया और शिव-सुख की प्राप्ति के लिए चौदहवाँ गुणस्थान प्राप्त कर नि:क्रिय अवस्था धारण कर ली । इसके बाद वे शुक्लध्यान के तीसरे पाये को छोड़कर अन्तिम व्युपरतक्रियानिर्वृत्ति नाम ध्यान करने लगे । यह ध्यान कर्म-शत्रु और शरीरादिक का नाश करनेवाला तथा मोक्ष का प्राप्त करानेवाला है । इस ध्यान के पहले समय में भगवान ने बहत्तर प्राकृतियों का नाश किया और अन्तिम समय में तेरह प्रकृतियों का । इस प्रकार सुदर्शन केवली भगवान ने सब कर्म और तीनों शरीर का नाश कर अनन्त-दर्शन आदि आठ श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त किया । वे संसार-वन्दनीय हुए । पौष सुदी पंचमी को भगवान् ने, स्वभाव से ऊँचे

की ओर जानेवाले एरण्ड के बीज की तरह ऊध्र्वगमन कर मोक्ष लाभ किया । वहाँ वे सिद्ध भगवान नित्य, अपने आत्मानन्द से प्राप्त हुए, घट-बढ़रहित, बाधा-हीन, निरुपम, अतीन्द्रिय, दु:खरहित, और अन्य द्रव्यों की सहायरहित लोकाग्रभा ग का अनन्त-सुख भोगते हैं और अनन्त काल तक भोगेंगे । इन्द्रादिक देवताओं, विद्याधरों, चक्रवर्तियों तथा भोगभूमि में उत्पन्न लोगों ने जो सुख भोगा, जो सुख वे भोगते हैं तथा आगे भोगेंगे, उस सब सुख को मिलाकर इकठ्ठा कर देने पर भी वह सिद्धों के एक समय में भोगे हुए सुख की भी तुलना नहीं कर सकता । उस सुख का शब्दों द्वारा वर्णन नहीं किया जा सकता । वह वचनों के अगोचर है ।

पहले जो धात्रीवाहन आदि राजा लोग मुनि हुए थे, उनमें कितने तप द्वारा कर्मों का नाशकर मोक्ष चले गये । कितने अपनी शक्ति के अनुसार की हुई तपस्या से सौधर्म स्वर्ग से लेकर सर्वार्थसिद्धि गये । कितनी शुद्ध सम्यग्दर्शन को धारण करनेवाली आर्यिकायें तप के प्रभाव से निंद्य स्त्रीलिंग का नाशकर सौधर्म स्वर्ग में गयीं; कितनी अच्युत स्वर्ग को गयीं । कितनी अच्युत स्वर्ग में देव हुईं और कितनी उसी स्वर्ग में सुख देनेवाली देवियाँ हुईं । इस प्रकार नमस्कार-गर्भित केवल एक अरहन्त भगवान के नाम-स्मरणरूप पद के प्रभाव से **अर्थ**ात् 'णमो अरहन्ताणं' इस पद के ध्यान से एक सुभग नाम ग्वाला दूसरे जन्म में जग का आदरपात्र, बड़ा भारी धनी, धर्मबुद्धि और मुक्ति-स्त्री का प्रिय सुदर्शन हुआ ।

जिनकी संसार के बुद्धिमानों द्वारा स्तुति की गयी, जो अनन्त गुणों के समुद्र हुए और जो मुक्ति-वधू का बल्लभ बने, उन सुदर्शन को मैं नमस्कार करता हूँ; वे मुझे शिव का देनेवाले हों । मनुष्य और देवों द्वारा किये गये उपद्रवों से जो चलायमान न होकर पर्वत समान तप में अचल बने रहे और जिसने कैवल्य प्राप्त कर मुक्ति लाभ की, वे सुदर्शन मुझे शक्ति दें । जो संसार में परम सुन्दर कामदेव, धीर, दक्ष और प्रतापी हुए, जिनने सब परीषहों-कष्ट पर विजय प्राप्त की, उन सुदर्शन को परमार्थ सिद्धि के लिए मैं वन्दना करता हूँ ।

केवलज्ञान के समय जिन्हें इन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्र, आदि ने विभूषित किया, जिनका जन्म वैश्यकुल में हुआ, जो बड़े धर्मात्मा और दिव्य सुन्दरता से युक्त थे, जो अनन्त गुणों के समुद्र और महा बलवान थे, जो बड़े ही पवित्र थे और जिनने कर्म-पर्वत को तप-वज्र से तोड़कर निर्वाणरूपी सुख-रत्न प्राप्त किया, उन मुनि-श्रेष्ठ सुदर्शन को मैं नमस्कार करता हूँ और उनकी स्तुति करता हूँ । वे मुझे अपनी सी शक्ति दें ।

इस प्रकार भक्ति से जिनकी मैंने स्तुति की, जिसने चंचल स्त्रियों पर असाधारण विजय प्राप्त कर अपनी दृढ़ चारित्रता प्रगट की, जो कमों का नाशकर मोक्ष गये, अनेक गुणों से युक्त वे सुदर्शन योगिराज मुझे । जिसमें कर्मों का नाश वह मौत, दु:खरहित मोक्ष, दर्शन-ज्ञान-चारित्र की विशुद्धता करनेवाले अपने गुण और मोक्ष जाने को अपनी शक्ति, ये सब बातें दें ।

मेरे (सकलकीर्ति के) द्वारा रचा गया यह पवित्र और कल्याण का करनेवाला सुदर्शन महामुनि का चरित्र इस पृथ्वीतल में विद्वानों द्वारा वृद्धि को प्राप्त हो । इसका खूब प्रचार हो ।

सब संसार जिनकी स्तुति करता है, वे भुक्ति-मुक्ति को देनेवाले तीर्थंकर, सत्पुरुषों को सब सिद्धि के देनेवाले और उत्कृष्ट अनन्त सिद्ध परमेष्ठी, पंचाचार पालन में तत्पर आचार्यगण, ज्ञान के समुद्र उपाध्याय और पाप नाश करनेवाले साधुजन, ये सब मंगल करें सुख दें ।

जो विचारशील शिव-सिद्धि के **अर्थ** इस निर्दोष चरित्र को पढ़ेंगे या दूसरों को सुनावेंगे और जो इसे विधिपूर्वक सुनेंगे, वे पुण्य से महासुख प्राप्त करेंगे ।

इस सुदर्शन चरित्र के श्लोकों की संख्या सब मिलाकर जोड़ने से नौ सौ (९00) है ।